हिमालय पर विजय

लेखक

श्री धर्मपाल शास्त्री

प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्ज

कश्मीरी गेट,

दिल्ली—६.

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली.

प्रथम संस्करण

मूल्य
दो रुपया आठ आना

मुद्रक
युगान्तर प्रेस
डफ़रिन पुल
दिल्ली.

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ संख्या
१. हिमालय-जन्म	...	...	१
२. विश्व-मुकुट की टोह में	...	...	३
३. पहला अभियान	...	...	११
४. दूसरा अभियान	...	...	२१
५. तीसरा अभियान	...	...	३३
६. पहली उड़ान	...	...	४४
७. करना या मरना	...	...	५२
८. चौथा अभियान	...	...	६२
९. पांचवां अभियान	...	...	७०
१०. छठा अभियान	...	...	८२
११. सातवां अभियान	...	...	९२
१२. आठवां अभियान	...	...	९७
१३. नवां अभियान	...	...	९९
१४. दसवां अभियान	...	...	१११
१५. ग्यारहवां अभियान	...	...	११८
१६. जहाँ साहस है वहीं सफलता	...	...	१२८
१७. श्री तेनसिंह	...	...	१४४

हिमालय पर विजय

दूसरी ओर का चित्र : तेनसिंह हिमालय के शिखर एवरेस्ट पर
विजय-पताका लहराते हुए

हिमालय-जन्म

एक दिन सहसा भारत के उत्तरी सागर के दोनों किनारे चंचल हो उठे। लहरें लपकने लगीं, तूफ़ान उफ़नाने लगे और युगों से समुद्र के हृदय में छिपी आग ज्वालामुखी बनकर प्रकट होने लगी। ऐसा लगता था मानों आज कोई अनहोनी घटना घट कर रहेगी।

ऐसे ही विक्षुब्ध वातावरण में किसी ने अंगड़ाई लेकर लहरों के बीच अपना मस्तक उठाया। यह पर्वतराज हिमालय था।

उसके सामने लहरें झुक गईं, ज्वालामुखियों ने घुटने टेक दिये और तूफान उसके चरणों में समा गए। हिमालय के सत्कार में सागर के दोनों किनारे सिमिट गये और उसकी विशाल जल-राशि के स्थान पर धीरे-धीरे नैपाल और तिब्बत नाम के दो सुन्दर प्रदेश प्रकट हुए। यह लाखों बरस पहले की बात है जब प्रकृति इस भूमण्डल का नक्शा बनाने में लगी थी।

उत्तरी हवाओं के शीतल झोंकों में और दक्षिणी पवनों की सुखद सरसराहट में हिमालय दिनोंदिन बढ़ने लगा। उसका विशाल मस्तक धरती से उभर कर बादलों की ओर बढ़ चला। लोगों ने कहा—'भूकंप आ रहे हैं'; संसार ने समझा 'ज्वालामुखी उबल

रहे हैं', किन्तु वास्तव में भारत भूमि हिमालय को अपनी गोदी में दुलराती हुई ऊँचा उठने का पाठ पढ़ा रही थी। पर्वत-राज के मस्तक ने अनायास ही आकाश को छू लिया। वह संसार का सब से ऊँचा पहाड़ बन गया।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य
स्थितः पृथ्व्या मिव मानदण्डः।

स्वयं आकाश ने उसके मस्तक पर चांदी का मुकुट पहिनाया और संसार को हिमालय के गौरव का परिचय देते हुए विश्व-कवि कालीदास ने गाया।

अर्थात् भारत के उत्तर में खड़ा हिमालय संसार को चुनौती दे रहा है। उसके गगनचुम्बी शिखर भूमण्डल के गौरव को बालिश्तों में नाप कर हीन करना चाहते हैं? वह केवल पर्वत नहीं, वह देवतात्मा हिमालय है, भारत भूमि का गौरव हिमालय!

सचमुच हिमालय ने अपने मानदंड (गज) से सारे भूमण्डल को नाप कर गौरव का एक रिकार्ड स्थापित कर दिया। देखें कौन बहादुर इस रिकार्ड को तोड़ता है?

विश्व मुकुट की टोह में

संध्या के बादल गुलाबी आंचल हिला-हिला कर सूर्य को विदा दे रहे थे। अस्ताचल को सरकती हुई किरणें बर्फीले पहाड़ों पर सोना-सा बिखेर रही थीं। इसी समय दार्जिलिंग में एक खिड़की से झांकते हुए मिस्टर एण्ड्रू वाघ ने बगल में खड़े हुए व्यक्ति से कहा—

"राधानाथ! देख रहे हो उन दूर के पहाड़ों को?"

राधानाथ—"हां साहिब? बड़े सुहावने दिखाई दे रहे हैं।"

मि० एण्ड्रू—"पहाड़ दूर से ही सुहावने दिखाई देते हैं। पास से उतने ही डरावने होते हैं।"

राधानाथ ने चकित हो कर कहा—"डरावने? नहीं साहब! मुझे तो पहाड़ों सा रमणीय दृश्य और कहीं दिखाई ही नहीं देता। मेरा तो यही जी चाहता है कि मैं भी पहाड़ों में पहाड़ बनकर रह जाऊं। देखते ही आंखें तृप्त होती हैं, मन प्रसन्न होता है और अंग-अंग में शीतलता छा जाती है।"

मि० एण्ड्रू—"होंगे शिमला और काश्मीर के पहाड़ दिल बहलाने वाले, किन्तु ये सामने के पहाड़ तो दिल दहला देने वाले

हिमालय के शिखर हैं। आज तक मनुष्य की छाया भी उन पहाड़ों पर नहीं पड़ सकी।"

इसी बीच साहब का शेरपा नौकर खाली प्यालियां उठाने के लिए कमरे में आया। अपने वतन की पहाड़ियों की बात चलते देखकर उससे न रहा गया और बोला—

"हुजूर! भला देवताओं के स्थान में इन्सान पहुँच ही कैसे सकता है? इन पहाड़ों में देवता निवास करते हैं। वह देखिये जिस पहाड़ के पास लाल लाल बादल दिखाई दे रहा है, वह गौरीशंकर है और उसकी बगल वाला कैलाश पर्वत। इसी पर कैलाशपति शिवजी महाराज और माता पार्वती रहती हैं।"

यह कहकर शेरपा ने श्रद्धा से सिर झुका दिया। उसकी भोली बातें राधानाथ और मिस्टर एण्ड्रू दोनों को बहुत भली प्रतीत हुईं। राधानाथ ने शेरपा के विश्वास के प्रति आदर दिखाते हुए कहा—

"किन्तु जो व्यक्ति श्रद्धा के फूल लेकर मंदिर में जाये कैलाश-पति उसकी भेंट को तो स्वीकार कर ही लेंगे न?"

शेरपा—"महाराज! कैलाश के देवता भूतपति हैं और गले में मुंडमाला पहनते हैं। फूलों से उनका क्या वास्ता? वे तो मनुष्यों के सिरों की बलि लेते हैं।"

शेरपा की इस बात पर मिस्टर वाघ ने इस ज़ोर से सिर हिलाया कि मानों उसकी बात पर उन्हें शत-प्रतिशत विश्वास हो। उन्होंने हुंकारा मारते हुए कहा—"राधानाथ! शेरपा ठीक

कहता है। अपने सिर की बलि दिये बिना कोई व्यक्ति उन शिखरों तक नहीं पहुँच सकता।"

अपनी बात का अनुमोदन पाकर शेरपा ने और भी दृढ़ता से कहा— "हां हुजूर! देवता लोग अपने निवास तक आदमी का पहुँचना कैसे स्वीकार कर सकते हैं? उन्हें नाराज करना ठीक भी तो नहीं।"

राधानाथ ने मिस्टर वाघ की ओर देखते हुए कहा— "देवताओं को रिझाना भी कोई कठिन काम है? चरण छूकर उनके हृदय में स्थान पाया जा सकता है और चन्दन तिलक लगाने के निमित्त देवताओं के मस्तक तक को छूआ जा सकता है। मनुष्यों में केवल ऊँची भावना की आवश्यकता है।"

मि० वाघ—"और वह भावना तुममें मौजूद है। ऊंची भावना के साथ-साथ साहस और योग्यता की भी तुममें कमी नहीं।"

शेरपा चला गया और मिस्टर वाघ कहते गये—

"राधानाथ, आज तुम्हारे रूप में मैंने मनचाहे वरदान को पा लिया। कहते हैं कि कोई-कोई क्षण ऐसा भी आता है जब मनुष्य अपने मन में जो भी बात सोचता है वही पूर्ण हो जाती है। सच मानों, जब मैंने तुम्हें पहाड़ों पर सूर्यास्त का दृश्य देखने का संकेत किया था उस समय मेरे मन में यही बात थी कि हिमालय की ये चोटियां आज तक मनुष्य के लिए वैसी ही रहस्य बनी हुई हैं जैसा कि देवलोक स्वर्ग। स्वर्ग-लोक की खोज में तो अनेकों साधक जा

भी चुके हैं किन्तु इन चोटियों की खोज लगाने के लिये कोई साहसी व्यक्ति नहीं निकला। मेरी इस इच्छा को मानों आज तुमने दृढ़ कर दिया। मैं केवल तुम्हारा दिल देखने और साहस की तह पाने के लिए इन चोटियों के विषय में डर और निराशा की बातें कह रहा था, किन्तु मैंने तुम्हारे साहस में कोई कमी न पाई। राधा-नाथ! क्या सचमुच तुम समझते हो कि इन चोटियों का पास से निरीक्षण सम्भव है?"

इसी समय समुद्रतल से उभर कर पूर्णिमा का चांद दूर पहाड़ों की चोटियों पर मुस्कराने लगा। राधानाथ ने उधर संकेत कर के कहा—"उधर देखिये साहब! हिमालय की ऊंची चोटियों पर खड़ा चांद हमें संकेत करके कह रहा है कि ऊँचा चढ़ने वालों के लिये कुछ भी काम कठिन नहीं है।"

एवरेस्ट—"किन्तु ऊँचा चढ़ने के लिये सीढ़ियां लांघनी पड़ती हैं। अभी मनुष्य ने हिमालय की पहली सीढ़ी को भी छुआ नहीं, इसलिए इस काम का बीड़ा तुम्हीं उठाओ। हमारा लक्ष्य इस प्रदेश की नापजोख करना है। तुम अभी से तैयारियां शुरू कर दो। देहली लौटकर मैं सरकारी कार्यवाही पूरी करूँगा।"

फिर क्या था! श्री राधानाथ भारत सरकार के सर्वे विभाग में मुलाजिम तो थे ही और गणित विषय में वे नाम भी पा चुके थे। अब उन्हें गौरीशंकर प्रदेश के नक्शे बनाने और नापजोख करने के लिये सुपरिंटैण्डैंट बनाकर सरकारी साज सज्जा के साथ भेजा गया।

एक दिन अकस्मात् राधानाथ दौड़ते हांपते हुए एण्ड्रू वाघ के कमरे में आये और बोले—"मैंने संसार के सब से ऊंचे शिखर का पता लगा लिया है। वह हिमालय का शिखर 'चोंगुला गामा' है।"

यह खुशखबरी भारत के लिये बड़े गौरव की थी। सभ्यता में भारत जगद्गुरु का स्थान सदियों पहले पा चुका था। "हिमालय का शिखर संसार में उच्चतम है" इस समाचार ने उसके गौरव पर मुहर लगा दी। गली-गली में और मुहल्ले-मुहल्ले में यह चर्चा का विषय बन गया। कुछ दिनों बाद दुनिया ने समाचर-पत्रों में यह खबर पढ़ी :—

संसार के उच्चत्तम शिखर की खोज

देहली। मंगलवार, १८५२।

श्री राधानाथ सुपरिंटैण्डैंट ने अपनी योग्यता, साहस और अनथक परिश्रम से हिमालय प्रदेश में नापजोख का काम करके यह पता लगाया है कि संसार का सबसे ऊंचा शिखर हिमालय का है। इस शिखर का तिब्बती नाम 'चोंगुला गामा' है, जिसका अर्थ है पर्वतों की रानी। शिखर की ऊंचाई २६,००२ फुट है। भारत भर में इस सूचना पर हर्ष प्रकट किया जा रहा है।

श्री राधानाथ का पूरा नाम राधानाथ सिकदार है। उनका जन्म कलकत्ते के सिकदारपारा नामक स्थान में सन् १८१३ में हुआ। अपने विद्यार्थीकाल में श्री राधानाथ की गणित में विशेष रुचि थी और अपनी कक्षा में वे सर्वदा गणित विषय में प्रथम रहते

आये हैं। शिक्षाकाल में उन्होंने संसार के प्रसिद्ध गणितज्ञ प्रोफेसर टाइटलर और प्रो० डेराजियों से भी शिक्षा ग्रहण की और प्रो० टाइटलर से न्यूटन की लिखी गणित-पुस्तक "प्रिंसिपिया" का अध्ययन किया। इस पुस्तक को पढ़ने वाले सब से पहले भारतीय श्री राधानाथ सिकदार ही हैं। गणित के अद्वितीय विद्वान् होने के कारण श्री राधानाथ ने शिक्षा काल में ही सर्वे विभाग में स्थान पा लिया। उन दिनों सर्वे विभाग के अध्यक्ष कर्नल एवरेस्ट थे। श्री राधानाथ ने सन् १८३२ से लेकर १८६२ अर्थात् पूरे ३० वर्ष तक बड़ी योग्यता से कार्य किया। वे एक साधारण क्लर्क के रूप में भर्ती हुए और शीघ्र ही अपनी योग्यता और अध्यवसाय के कारण उन्नति करते गये। अपनी सेवा के अंतिम १३ वर्षों से वे गणना विशेषज्ञ के रूप में सुपरिंटैण्डैंट का काम करते आ रहे हैं। हिमालय की उच्चतम चोटी का पता लगा कर वे भारत के ही नहीं अपितु संसार के शिरोमणि युवक बन गये हैं। भारत और भारतवासियों को उन पर अभिमान है।

सरकार की ओर से यह भी घोषणा की गई है कि हिमालय के उच्चतम शिखर का नाम चोंगुलागामा प्रसिद्ध है किन्तु सर्वे विभाग के भूतपूर्व सर्वेयर-जनरल कर्नल एवरेस्ट के सम्मान में इस शिखर का उपनाम "एवरेस्ट शिखर" भी रखा गया है।

यह समाचार श्री राधानाथ ने भी पढ़ा। उस समय वे अपने इष्ट-मित्रों में बैठे बातें कर रहे थे। समाचार की अंतिम पंक्तियों

पर मित्रों ने खेद प्रकट किया । राधानाथ ने सहज स्वभाव से उत्तर दिया—

"मुझे इस बात पर तनिक भी असन्तोष नहीं कि इस चोटी का नाम एवरेस्ट शिखर क्यों रखा गया है । मुझे इसी बात पर गर्व है कि संसार की सबसे ऊंची चोटी मेरे देश भारत में है और उसकी खोज का काम भारत के एक सैनिक ने किया है । देश का अभिमान ही मेरा सच्चा इनाम है । अब मेरे मन में यदि कोई इच्छा शेष है तो यही कि इस शिखर पर सबसे पहले चढ़ने का श्रेय यदि किसी को प्राप्त हो तो किसी भारतीय को ही हो ।"

राधानाथ की घोषणा दो पक्षों ने सुनी । एक, मनुष्य ने और दूसरे, हिमालय ने ।

मनुष्य ने कहा—अपनी बुद्धि और साहस के आधार पर संसार में सब से ऊंचा मैं हूँ ।

हिमालय ने कहा—नहीं, मैं सब से ऊंचा हूँ । देखते नहीं, मेरी २६,००२ फुट ऊंची चोटी ? यदि तुम्हें अपने साहस और बुद्धि पर अभिमान है तो ऐ मनुष्य ! आ, मेरे शिखर को छूकर देख ।

मनुष्य ने आज तक किसी को अपने से ऊंचा नहीं माना । जिसने भी सर उठाकर देखा, चाहे वह आकाश हो या पाताल, मनुष्य ने उसे नीचा दिखा कर छोड़ा । फिर भला वह हिमालय से कैसे हार मान जाता ? उसकी चुनौती सुनकर मनुष्य का सोया हुआ

साहस जाग उठा और हिमालय पर चढ़ाई करने के लिये उसका दिल उभरने लगा।

उधर हिमालय भी चुप न था। सुनते हैं कि पच्चीस वर्ष की आयु के उपरान्त मनुष्य की ऊंचाई बढ़नी समाप्त हो जाती है। किन्तु हिमालय की ऊंचाई तीन करोड़ वर्ष की आयु में भी बढ़ती गई, जबकि बुढ़ापे के कारण उसके सिर का एक एक बाल पक कर सफेद हो चुका था। यह बात दूसरी है कि यह बढ़ोतरी बहुत कम और केवल सवा इंच प्रति वर्ष के हिसाब से हो। स्पर्धा के जोश ने बूढ़े को भी जवान बना दिया। इस प्रकार एक ओर हिमालय का शिखर और दूसरी ओर मनुष्य का साहस, दोनों होड़ लगाकर बढ़ने लगे। मनुष्य आक्रमण की तैयारियां करने लगा और हिमालय प्रत्याक्रमण की। पूरे ७० वर्ष तक ये तैयारियां चलती रहीं। संसार के सब से ऊंचे पर्वत को हराकर यश प्राप्त करने के लिए दुनियां के कोने-कोने से यात्री तैयार होने लगे। आखिर सन् १६२१ में यात्रियों के एक दल ने हिमालय पर चढ़ाई की घोषणा कर दी। इस दल के नेता थे हावर्ड बरी।

आइये इस चढ़ाई का रोमाञ्चकारी वर्णन हावर्ड बरी के मुँह से ही सुनिये :—

पहला अभियान

(१९२१)

एक दिन मुझे तिब्बत सरकार का पत्र मिला। उसमें लिखा था—"पूज्य दलाईलामा ने एवरेस्ट शिखर पर चढ़ने के लिये आपकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है और इस पत्र के साथ वे अपनी अनुमति एवं आशीर्वाद आपको भेजते हैं।"

यह आज्ञा-पत्र एवरेस्ट पर चढ़ने की मेरी आधी सफलता का सूचक था। क्योंकि मैं पहला ही व्यक्ति था जिसे उक्त शिखर पर चढ़ने की अनुमति मिली हो। अन्य किसी यात्री को तब तक यह सुविधा न मिल सकी थी। इसका एक मुख्य कारण था—वह यह कि एवरेस्ट तक पहुँचने के केवल दो ही मार्ग हैं। एक तिब्बत की ओर से और दूसरा, नेपाल की ओर से। तिब्बत के लामा लोग हिमालय को देवताओं का निवास-स्थान मानते हैं और नेपाल के गोरखे उसे शिवजी की तपोभूमि। दोनों ही देश किसी यात्री को उस ओर जाने की अनुमति देकर अपने इष्ट देवता की शांति में विघ्न डालना नहीं चाहते। इसलिए एवरेस्ट तक जाने की अनुमति लेना सरल काम न था। मैंने आज्ञा-पत्र मिलने

का शुभ-सन्देश अपने साथियों को सुनाया। यह समाचार सुनकर वे फूले न समाये। शीघ्र ही एवरेस्ट पर चढ़ने की तैयारियाँ आरम्भ कर दी गईं।

कहने को तो हम एवरेस्ट की चढ़ाई करने जा रहे थे, किन्तु वास्तव में हमारा उद्देश्य था—एवरेस्ट पर चढ़ने के लिये किसी सम्भव और सरल मार्ग की खोज करना, और यदि कोई सरल मार्ग मिल जाये तो एवरेस्ट पर चढ़ना भी। हिमालय के पहाड़ी प्रदेश में नया मार्ग ढूंढ़ निकालना और रास्ता काट-काट कर आगे बढ़ना कितना कठिन काम है, इस बात का अनुमान मैंने पहले से ही लगा लिया था। इसलिये मैंने अपने दल को अधिक-से अधिक दृढ़ बनाने का निश्चय किया। मैंने ऐसे व्यक्तियों को चुना जिनका स्वास्थ्य और साहस दोनों उन्नत हों और जिन्हें ऊंचे पर्वतों पर चढ़ने का काफी अभ्यास हो। उन दिनों डाक्टर रेबर्न, डाक्टर केलास, मैलोरी और बुलक प्रसिद्ध पर्वतारोही माने जाते थे। मेरे अनुरोध पर ये चारों व्यक्ति मेरे दल में सम्मिलित हो गये।

चिकित्सकों और इंजीनियरों आदि को मिलाकर कुल नौ पर्वतारोहियों का दल संगठित हुआ। मैं खूब जानता था कि दल का नेता और दल के दूसरे सदस्य चाहे कितने ही अनुभवी क्यों न हों, यदि उनके कुली और पथप्रदर्शक होशियार नहीं तो पर्वत पर चढ़ने में कभी सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। पर्वतारोहियों के बिस्तरे, तम्बू, औषधियाँ, ईंधन, आहार तथा अन्य आवश्यक

सामान तो कुलियों ने ही ले जाना होता है। इसलिए मैंने जैसे होशियार साथी चुने थे वैसे ही कुली भी इकट्ठे किये। सब तैयारियाँ पूरी हो जाने पर १८ मई सन् १६२१ को हमारा शानदार दल दार्जिलिंग से चल पड़ा। आगे-आगे हम और पीछे-पीछे याकों, खच्चरों और टट्टुओं पर सामान लादे हुए हमारे कुली चलने लगे।

एवरेस्ट की चोटी हमें दार्जिलिंग से ही दीखनी आरम्भ हो गई थी और ऐसा लगता था कि वह बहुत दूर नहीं है। पहाड़ी प्रदेश में हमें अधिक से अधिक लम्बे और घुमावदार रास्तों से होकर जाना पड़ा। दार्जिलिंग से चल कर सिक्किम रियासत में से होते हुए हम लोग ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे-किनारे आगे की ओर बढ़ने लगे। यह नदी हिमालय की गोदी में से ही निकलती है। गंगा, सिन्धु और अलकनंदा का उद्‌गम स्थान भी पर्वतराज हिमालय ही है। हम झरनों, झीलों और रंग-बिरंगे फूलों में से गुजरते हुए शेकाइजांग नामक पड़ाव को लक्ष्य बनाकर चल रहे थे जोकि बौद्ध भिक्षुओं का एक प्रसिद्ध बिहार (मठ) है। अभी हम आधी मंजिल भी तय न कर पाये थे कि सहसा डाक्टर केलास बीमार पड़ गये। हमने उन्हें वहीं ठहर कर स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए कई बार कहा, किन्तु उन्होंने हर बार यही उत्तर दिया कि मैं शीघ्र ही स्वस्थ हो जाऊँगा, साधारण-सा ज्वर है। विवश होकर हम उन्हें कुलियों की पीठ पर बिठा कर अपने साथ ले चले।

अभी बर्फीला रास्ता आरम्भ नहीं हुआ था, फिर भी हमारी चाल बहुत धीमी और हल्की थी, क्योंकि हमारा काम केवल आगे बढ़ना ही न था अपितु भूमि की नाप-जोख करना, नक्शे खींचना और एवरेस्ट तक पहुँचने के उल्टे-सीधे मार्गों की खोज करना भी था। हमें शेकाईजांग के पुण्य दर्शनों से इन कठिनाइयों की याद तक न रही। सचमुच वह एक सुन्दर तीर्थ स्थान है। नदियों और पर्वतों के बीचोंबीच बौद्धों के इस बिहार में ४०० के लगभग बौद्ध भिक्षु रहते हैं। चूंकि तब तक सातसमुंदर पार का कोई भी अंग्रेज यहाँ तक न पहुँचा था इसलिए हमें देखने के लिए हमारे चारों ओर अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हो गई। यहीं बौद्ध बिहार के कुछ लामाओं से हमारी भेंट हुई। तिब्बत में धर्मगुरुओं को लामा कहते हैं और सबसे बड़े लामा को दलाई लामा कहते हैं। लामाओं ने हमारा विशेष स्वागत किया और हमें बिहार में ले जाकर अपने ६६ वर्षीय बूढ़े दलाई लामा के दर्शन करवाये। यहां हमें खाने को तिब्बती मिठाइयां और पीने को मक्खन-मिली चाय दी गई। यह चाय इतनी स्वादिष्ट थी कि आज भी उसको याद करके मुंह में पानी भर आता है।

ऐसे स्नेही मेजबानों की फोटो लेना हम न भूले। उन लोगों ने जीवन में कभी फोटो न देखी थी, इसलिए हमने उनकी एक फोटो लेकर उन्हें भेंट की और साथ में दी एक टार्च। बटन दबाने मात्र से टार्च को जलते-बुझते देखकर वे लोग बड़े चकित हुए। अभी हम लोग लामाओं से परिचय कर ही रहे थे कि

जांजपेन नामक एक शेरपा हांपता हुआ आया और बोला—"डाक्टर केलास चल बसे"। पर्वत पर चढ़ने की सबसे अधिक आशा हमें डाक्टर केलास पर ही थी। इसलिए उनकी मृत्यु हमारी यात्रा में पहली किरकिरी सिद्ध हुई।

हमने एक ढलान पर कब्र खोदकर डाक्टर केलास को हिमालय की ही गोद में सुला दिया। उनकी कब्र की एक ओर पौकुनी, किंचिजौ और चौमियोमो नाम के शिखर दिखाई देते थे जिन पर स्वयं डाक्टर केलास पहले चढ़ चुके थे, और दूसरी ओर एवरेस्ट का शिखर जिस पर चढ़ने की अभिलाषा मन में ही संजोये हुए वे चल बसे थे। हमने कुछ जंगली फूल तोड़ कर उनकी क़ब्र पर चढ़ाये। एक साहसी वीर के लिये यही हमारी अंतिम श्रद्धांजलि थी।

बिहार से जाने को जी तो न चाहता था किन्तु एवरेस्ट का निमन्त्रण हम न भूले थे। हम दुगुने उत्साह से टिगरीजांग की ओर चढ़ने लगे। यह वही स्थान है जहां से एवरेस्ट की असली चढ़ाई आरम्भ होती है। यह स्थान तिब्बत और नेपाल की सीमा पर स्थित है और प्रसिद्ध व्यापारिक मण्डी है, इसलिए ऊपर कैंपों में सामान पहुँचाने के लिए इसी स्थान को हमने अपना गोदाम बनाया।

२३ जून को मैलोरी और बुलक १८ कुलियों और चार याकों को साथ लेकर एवरेस्ट शिखर तक पहुँचने का सरल और सीधा मार्ग पता लगाने के लिये चले।

एवरेस्ट उनके बिल्कुल सामने खड़ा था। किन्तु वहां तक पहुँचने का मार्ग बीहड़ से बीहड़ होता जा रहा था। बर्फ के तोदे, खूंखार नाले और बर्फ की ऊँची दीवारें मानो कह रही थीं—यात्री! बस आगे नहीं, यहीं से लौट जाओ। किन्तु वे आगे बढ़ते ही गये। दो दिन की चढ़ाई के बाद उन्होंने १८,००० फुट की ऊँचाई पर अपना पहला शिविर (कैंप) स्थापित किया।

यहां से कदम-कदम ऊपर चढ़ते हुए दोनों यात्री एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहां दस हज़ार फुट लम्बी-चौड़ी बर्फ की एक दीवार उनका रास्ता रोक कर खड़ी हो गई।

हम नीचे से दूरबीनों के द्वारा दोनों यात्रियों की एक-एक क्रिया बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे। पहले-पहले तो मैलोरी को हमने उस दीवार की जड़ तक पहुँचते देखा किन्तु उसके बाद कई दिनों तक उसका कोई चिन्ह दिखाई न दिया। जब मैलोरी नीचे लौटा तो उसने बताया—

"एक १० हज़ार फुट लम्बी-चौड़ी दीवार मेरा रास्ता रोक कर खड़ी हो गई। यह दीवार बिना कटे-फटे सीधी एवरेस्ट की उत्तरी चोटी तक चली गई है। इसे पार करने की मुझे कोई सम्भावना न दीख पड़ी। किन्तु मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि आगे चल कर चोटी के ऊपर का मार्ग अधिक सरल है। इस लिए मैं निराश न हुआ और किसी प्रकार दीवार से पार पहुँचने का मार्ग खोजने लगा। उस दीवार में मुझे केवल एक मोचा दिखाई दिया, जिसका नाम मैंने उत्तरी मोचा या 'नार्थ-पोल' रखा। अच्छी

तरह देखने पर मुझे निश्चय हो गया कि उत्तर की ओर से नार्थ-पोल तक पहुँचना असम्भव है। इसलिये वहां तक पहुँचने का यत्न पूर्व की ओर से करना चाहिये। इसलिये मैं आप लोगों से परामर्श करने नीचे आया हूँ।"

मैलोरी की बात सुनकर हमारा दल एवरेस्ट के पूर्वी सिरे पर जमा हुआ। वहां मैलोरी, बुलक और व्हीलर ये तीनों यात्री नार्थ-पोल की ओर रवाना हुए। इस चढ़ाई का वृत्तान्त मैलोरी यूं बताता है—

"ऊपर चढ़ते हुए हमारे मार्ग में बर्फ़ आई, धुंध आई और बौछारें आईं, किन्तु साथ ही वे क्षण भी आये जब एवरेस्ट की सफेद चाँदी की चादर पर सूर्य की चमचमाती किरणें पड़ने से हमारी आँखें चुँधियाने लगीं और ताज़ा बर्फ़ में से उभरती हुई गर्मी से हमारा शरीर झुलसने लगा। किन्तु निर्मल नीले आकाश तले इतनी ऊँचाई पर प्रकृति का जो स्वर्गीय दृश्य हमें दिखाई दिया उसे न कोई चित्रकार चित्रित कर सकता है और न कवि शब्दों में प्रकट कर सकता है। हिमाच्छादित चोटियां सूर्योदय के समय गुलाबी, दो क्षण बाद सुनहरी, फिर चांदी सी उजली और फिर नीलम सी नीली होती हुई दिन ढलते तक बीसियों रूप बदलती थीं। सब तरफ़, चारों ओर, शांति का साम्राज्य था, मानो दुनिया की उथल-पुथल से थकी हुई प्रकृति देवी वहां सुख की नींद सो रही हो। मुझे लगा कि सचमुच इन शिखरों पर देवताओं का निवास है। उनकी शान्ति में विघ्न डालने का

हमारा कोई अधिकार नहीं। हां, प्रकृति देवी की शरण में आकर हम दुनियां वाले अपने अशांत हृदय के लिये भीख अवश्य मांग सकते हैं।"

मैंने एक बार हजारों फुट नीचे धरती की ओर देखा। नेपाल के आकाश में बादलों का समुद्र उमड़ रहा था और बिजलियां कड़क रही थीं। किन्तु हमारे चारों ओर पूर्ण शान्ति थी और हम इन कड़कती बिजलियों की ओर ऐसे ही देख रहे थे जैसे कि देवता लोग ऊपर से मनुष्यों को तड़पते हुए देखते हैं। अब तक अपना सारा जीवन हमने बादलों की छत के नीचे डरते-कांपते हुए बिता दिया था, किन्तु दो क्षण के लिये हम बादलों से भी हजारों फुट ऊँचे थे और उनकी ऊपरी छत को अपनी आंखों के नीचे देख रहे थे। हमें गर्व हो रहा था कि बिना पंखों के हम लोग बादलों से भी अधिक ऊँचाई पर पहुँच चुके हैं और संसार की सब से अधिक ऊँचाई, एवरेस्ट शिखर की ओर बढ़ रहे हैं।

प्रकृति की ओर से दृष्टि घुमा कर हमने आपस में एक-दूसरे की ओर देखा। सबके हाथ-पांव नीले पड़ चुके थे और नसें अकड़ने सी लगी थीं। बड़ी कठिनाई से व्हीलर ने चाय बनाई। घूंट भरते-भरते मैंने व्हीलर से कहा—

"शायद पर्वतों की रानी ने हमारे प्यालों में अमृत उँडेल दिया है, नहीं तो मर्त्य-लोक की चाय में इतना स्वाद कहाँ?"

यह कह कर मैं दूसरी घूँट भरने लगा तो चाय की प्याली में कुलफी जमी हुई पाई ! इतनी वहाँ सर्दी थी।

हम फिर आगे बढ़े। ताज़ी बर्फ़ पड़ी हुई थी और चलते समय मानो बर्फ़ का एक-एक कण हमारे पांवों के तलुए पकड़ कर पीछे की ओर खींचता और कहता था "यात्री ! आगे मत बढ़ो पीछे लौटो।" हम जितनी बार कदम उठाते थे उतनी बार ताज़ी बर्फ़ हमारे बूटों में चिपकती जाती थी और हमारा एक- .क पांव मन-मन भारी हुआ जा रहा था। सबसे आगे चलने वाले का काम बहुत ही कठिन था किन्तु उसके पद-चिन्हों पर चलते हुए पीछे के साथियों को इतनी कठिनाई न होती थी।

आखिर में (मैलोरी) अकेला नार्थपोल तक पहुँच ही गया। यह स्थान समुद्र-तट से २३००० फुट की ऊँचाई पर है। इसके बाद दूर तक मैंने देखा कि मार्ग में न कोई कठिनाई है और न भय। एवरेस्ट का शिखर मेरे बिल्कुल आमने-सामने खड़ा था और मैं उसे ललचाई हुई नज़रों से देख रहा था। वहां तक पहुँचने का मुझ में पूरा उत्साह था, किन्तु सहसा तेज़ हवा चलने लगी और ताज़ा बर्फ़ गिरने लगी। ये धरती की बौछारें न थीं अपितु २३००० फुट ऊपर एवरेस्ट के शस्त्र थे। वह अपने रजतमुकुट को मेरे पांवों से पददलित होते नहीं देखना चाहता था, इसलिए उसने बर्फ़ानी तूफान का अपना अमोघ शस्त्र मुझ पर छोड़ा। मैं आगे न बढ़ सका और लौट आया।

इस प्रकार नार्थपोल तक पहुँचकर मैलोरी नीचे के कैंप में लौट आया। हमने आलिंगन ले-लेकर उसका स्वागत किया। यद्यपि हमारा दल एवरेस्ट शिखर तक पहुँच न पाया था फिर भी हमारी यात्रा का उद्देश्य पूरा हो चुका थ । हमने शिखर तक पहुँचने का मार्ग पता लगा लिया था।

दूसरा अभियान

(१६२२)

मैलोरी की कहानी दुनिया ने बड़े चाव से सुनी। मैलोरी ने भी अपने अनुभव और सफलता का कोई भेद छिपा न रक्खा। दार्जिलिंग से नार्थपोल और नार्थपोल से ऊपर जाने का मार्ग उसने संसार को बड़े गर्व से बताया। जैसे शिकारी को शिकार की टोह पाकर प्रसन्नता होती है वैसे ही पर्वतारोहियों ने जगत में एवरेस्ट का समाचार बड़े उत्साह से सुना। इंग्लैंड के जनरल सी० बी० ब्रूस ने अगले ही वर्ष अर्थात् १६२२ में एवरेस्ट पर दूसरी चढ़ाई करने का निश्चय कर लिया।

एक दिन—

" मिस्टर ब्रूस—मैलोरी ! क्या सम्भवतः मनुष्य एवरेस्ट के शिखर पर विजय प्राप्त कर सकता है ?

मैलोरी—हां। मुझे निश्चय है कि एक न एक दिन हिमालय के इस सर्वोच्च शिखर पर मनुष्य अवश्य विजय प्राप्त कर लेगा। किन्तु कह नहीं सकते कि विजय का श्रेय किस सौभाग्यशाली व्यक्ति के हाथ लगेगा ?

ब्रूस—यदि हम अधिक से अधिक तैयारी करके एवरेस्ट पर चलें तो ?

मैलोरी—तो सफलता की अधिक से अधिक आशा हो सकती है। मैं निश्चय से इसलिए नहीं कहता कि हमारा विरोधी भी कम बलवान् नहीं। उसके पास बर्फ, तूफान, नाले, धुंध, ग्लेशियर, खाइयां, सर्दी, और ऐसे अनेकों अस्त्र हैं। यह सब होते हुए भी उसके पास मनुष्य का सा साहस नहीं है। वह जैसा है सदा वैसा ही रह सकता है, किन्तु हम अपने अनुभवों से सीख-सीखकर अपने आप को कठिन से कठिन परिस्थिति का सामना करने योग्य भी बना सकते हैं। पर्वत के पास बर्फ है तो हम बर्फानी बूट पहन सकते हैं और कुल्हाड़ों से उसे काट सकते हैं। उसके पास सर्दी है तो हम सर्दी से बचाव के लिए चमड़े और ऊन के कपड़े पहन सकते हैं उसके पास धुंध, तूफान, खाइयां और नाले हैं तो हम पुलों, रस्सी की सीढ़ियों और आक्सीजन के यन्त्रों जैसे बीसियों उपायों से उसके सब प्रयत्नों को बेकार कर सकते हैं। इन सबसे अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि रास्ते के विचार से एवरेस्ट शिखर पर चढ़ना हिमालय के अन्य शिखरों की अपेक्षा कहीं अधिक सरल है। पिछले वर्ष का मेरा अनुभव तो यही है। पिछले वर्ष हमने आक्सीजन का बिल्कुल प्रयोग नहीं किया किन्तु पहाड़ पर ज्यों-ज्यों ऊँचा बढ़ते जाएं, उतनी ही वायु हलकी होती जाती है और अन्त में आक्सीजन का भाग ही वायु में प्राप्त हो सकता है जो कि मनुष्य के सांस

लेने के लिए बहुत कम है। अतः सांस फूलने लगता है। हमें आशा करनी चाहिए कि इस वर्ष हम २१००० फुट से भी ऊपर चढ़ेंगे और यथा-सम्भव आक्सीजन का प्रयोग नहीं करेंगे। फिर भी आक्सीजन का साथ ले जाना आवश्यक है।"

बस, फिर क्या था, जनरल ब्रूस ने जोर-शोर से तैयारियां आरम्भ कर दीं। पिछली बार नौ पर्वतारोही थे। इस बार १३ चुने गये। पिछली बार गिने-चुने कुली थे। इस बार साठ किये गये। पिछली बार भारवाहक पशुओं की संख्या कम थी। इस बार तीन सौ बीस का प्रबन्ध किया गया। हथियारों, वर्दियों और वैज्ञानिक उपकरणों के जुटाने में भी कोई कसर न रखी गई। इस प्रकार सब तरह से सुसज्जित होकर यह दल मार्च १६२२ के अन्त में दार्जिलिंग से चला। जिले के ब्राह्मणों और लामाओं ने दल की सफलता के लिये प्रार्थनाएं कीं। इन प्रार्थनाओं और आशीर्वादों से कुलियों का उत्साह दूना हो गया।

ब्रूस स्वयं तो अधिक ऊँचा नहीं जा सकता था। इसलिये उसका काम दल का प्रबन्ध करना और कुलियों में उत्साह पैदा करना था। चोटी तक पहुँचने के लिए मैलोरी, नार्टन, समरवेल और फंच जैसे अनुभवी यात्री दल में थे।

नार्थपोल तक का मार्ग पिछले वर्ष वाला दल मालूम कर ही गया था। उसी की सूचना के अनुसार और उसी मार्ग से ब्रूस का दल भी नार्थपोल की ओर बढ़ चला। रास्ते में चढ़ाइयां, उतराइयां चट्टानें, ढलानें और खाइयां आईं। लोहे सी काली, चांदी सी

उजली, मैदान सी समतल और पहाड़ सी ऊँची सब तरह की बर्फ़ मार्ग में आई। किन्तु इन कठिनाइयों का सामना करने के लिए दल के पास पर्याप्त साधन थे। इसलिए बड़े आराम से वह नार्थपोल की जड़ तक जा पहुँचे। मार्ग में उन्हें दो पड़ाव डालने पड़े। पहला पड़ाव १७८०० फुट की ऊँचाई पर और दूसरा १९८०० फुट की ऊँचाई पर। नार्थपोल के पास तीसरा पड़ाव २१,००० फुट की ऊँचाई पर गाड़ा गया। प्रत्येक पड़ाव में पर्याप्त भोजन-सामग्री और अन्य वस्तुएं जमा करते गये, और पहले पड़ाव से दूसरे तक और दूसरे से तीसरे तक एक सरल मार्ग भी बनाते गये, जिससे ऊपर नीचे सन्देश पहुँचाने का विशेष प्रबन्ध था।

एवरेस्ट के साथ असली मुकाबिला और मौसम के विरुद्ध जबरदस्त भिड़ंत यहीं से आरम्भ हुई। सामने दीवार की सी सीधी चढ़ाई थी। एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, बीसियों आदमियों के दल ने ऊपर चढ़ना था। निश्चय ही यह बड़े साहस का काम था। एक साहसी की जबानी यह वर्णन सुनिये। मैलोरी लिखता है—

"मैंने समरवेल, नार्टन और मोर्सहैड ने उस चट्टान पर चढ़ने का यत्न किया। वहां केवल पांव बढ़ाना ही हमारा काम न था अपितु पांव जमाने के लिए जगह बनाना भी। लोहे सी सख्त बर्फ़ पर कुल्हाड़े की एक-एक चोट में शरीर का सारा बल लगाना पड़ता था। अपने पीछे-पीछे आते हुए कुलियों के लिए रस्सियों

की सीढ़ियाँ बिछाते जाना भी हमारे जिम्मे था। शीघ्र ही कुली लोग भी पीठों पर बिस्तर, तम्बू, भोजन-सामग्री, दवाइयां और आक्सीजन के यन्त्र लादे रस्सी की सीढ़ियों पर पांव जमाते हुए चींटियों की चाल से ऊपर चढ़ने लगे। आक्सीजन के हलके से हलके यन्त्र का वजन १५ सेर होता है। ऐसे कई यन्त्र कुलियों की पीठ पर थे, दूसरा सामान इसके अतिरिक्त। फिर सीधी चढ़ाई में एक-एक सेर की वस्तु मन-मन भारी प्रतीत होती है। यह उन शेरपाओं की ही हिम्मत है जो इस ऊँचाई पर भी इतना बोझ ले जाते हैं। पर्वतारोहियों की सफलता का आधा श्रेय इन कुलियों को ही होता है।

इसी प्रकार कदम-कदम आगे बढ़ते हुए हम दोपहर तक कुछ सौ फुट ही ऊपर चढ़ पाये। ऊँचाई-मापक यन्त्र ने बताया कि वह स्थान २५००० फुट ऊँचा था। हम अपनी थकान मिटाने के लिये एक चट्टान के तले रुक गये।

कुलियों ने बर्फ़ की चार-दीवारी बनाकर उसमें तम्बू गाड़ दिया। हमने रात वहीं बिताने का निश्चय किया और कुलियों को पाले से बचाने के लिए नीचे के पड़ाव में भेज दिया। सर्दी का कुछ अन्त न था। सूर्य की किरण भी मानों शीत बरसा रही थी। भरी दोपहरी को ही सांझ हो गई और तीन बजते-बजते सूर्य भी ऊंचे शिखरों के पीछे अस्त हो गया। मारे सर्दी के सारी रात हमें नींद न आई। ठोडी और घुटनों को मिलाकर हम रात भर गठरी बनकर पड़े रहे।

सुबह उठे तो काफ़ी बर्फ पड़ चुकी थी। मेरी तीन उंगलियों को पाला मार गया था। नार्टन का एक कान सूजकर डबल-रोटी बन गया था और मोर्सहैड के अंग-अंग में इतनी पीड़ा हो रही थी कि उससे उठे न बनता था। मैं अकेला ही कुलियों को जगाने चला। कैंप में पहुँचकर मैंने कई आवाजें लगाई—शेरपा! कुली! तेजपाल! किन्तु भीतर से एक का भी उत्तर नहीं मिला। आशंका से मेरा हृदय धड़कने लगा। मैं तम्बू की रस्सियों को खोल कर भीतर घुसा तो क्या देखता हूँ कि सब के सब अचेत पड़े हैं। उन पर ऊंचाई की पतली हवा का असर हो चुका था। मैंने उन्हें हिलाया-डुलाया। चार तो अधिक बीमार थे किन्तु पांच कुली थोड़े से उपचार से स्वस्थ्य होगये। यात्रा आरम्भ करने में विलम्ब तो हो ही चुका था। चाय आदि बनाने में और भी अधिक समय निकल गया। उधर कुलियों की भूल से भोजन-सामग्री भी सोने के थैलों से बाहर ही रखी रह गई थी अतः रात को पाले के कारण जम कर बर्फ बन गई थी। उसे गर्म करने और बनाने में भी अनुमान से अधिक समय लग गया। इस प्रकार यात्रा आरम्भ करने में हम पूरा एक घण्टा लेट हो गये।

इस कमी को पूरा करने के लिए हमने जल्दी जल्दी कदम बढ़ाना चाहा किन्तु फूलते सांस ने हमारा साथ न दिया। एवरेस्ट का शिखर अभी काफी दूर था और हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि सूर्य ढलने तक हम वहां नहीं पहुँच सकते; फिर भी हम अधिक से अधिक ऊंचा चढ़ने का लक्ष्य बना कर आगे बढ़ने लगे।

हम दिन भर चलते रहे और सांझ पड़ते-पड़ते २६८०० फुट की ऊंचाई तक जा पहुँचे। हृदय में तो इससे भी आगे बढ़ने का साहस था किन्तु पांव जवाब दे चुके थे। ऊपर से ढलती संध्या हमें वहीं रुक जाने की झंडी दिखा रही थी। हम एवरेस्ट को ललचाई हुई नजरों से देखकर पीछे लौट पड़े।

नीचे की ओर दृष्टि घुमाई तो अपने बनाये हुए रास्ते का चिन्ह-मात्र भी दिखाई न दिया। ताज़ा बरफ पड़ने से सब गड्ढे भर गये थे और हमें दुबारा उतने ही परिश्रम से एक-एक क़दम की पकड़ बनाते हुए नीचे उतरना पड़ा। असली रास्ता तो गुम हो चुका था, हम अनुमान के सहारे अपना मार्ग बना रहे थे। एक कदम गलत जगह पर पड़ गया। जिसे हम ठोस बर्फ समझे थे वास्तव में वह एक गड्ढा सा था और नई बर्फ से ढक जाने से समतल दिखाई देता था। हमारे पाँव उखड़ गये और हम नीचे की ओर बेसहारा लुढ़कने लगे। सहसा वह रस्सी हमारे हाथ लग गई जिसे हम बिछाते हुए ऊपर चढ़ते जाते थे। वह रस्सी बर्फ में गड़े हुए कहीं कुल्हाड़े के सहारे तनी हुई थी। हम तीनों उसी से लटक गये। हमारे सिर नीचे और पाँव ऊपर थे। किन्तु धैर्य बुलन्द था। हमने साहस करके झटपट अपने-अपने कुल्हाड़े बर्फ में धंसा दिये और उनका सहारा लेकर औंधे ही लटकने लगे। एक दम सीधा होने तक की हिम्मत भी हममें न रही थी। कुछ देर तक हम इसी प्रकार जीवन और मृत्यु के बीच लटकते रहे। जब हमारी हृदय की धड़कन धीमी हुई और हाथ-पाँव की कंपन समाप्त

हुई तो हम सरक कर समतल भूमि पर आये। नार्टन और समरवेल में इतनी भी शक्ति शेष न रह गई थी कि वे आगे बढ़ कर नया रास्ता बनाते, इसलिए यह काम मैंने अपने हाथों में लिया। रास्ता बनाने के कारण नीचे उतरने की हमारी चाल उतनी ही धीमी थी जितनी कि ऊपर चढ़ते समय थी। अपने कैंप तक पहुँचने से पहले ही सूर्य ढल गया और चारों ओर अंधेरे का काला आवरण छा गया। तारों की छाया में हम लोग एक बत्ती के सहारे मार्ग टटोलते हुए नीचे उतरने लगे।

एक जगह आकर हमारा रास्ता बन्द हो गया। हमारे सामने एक लम्बा-चौड़ा गड्ढा बन गया था। बत्ती के धुंधले प्रकाश में हमने नीचे झांककर देखा तो लगभग १५ फुट गहरा था और नीचे ताजा वर्फ का नर्म गद्दा बिछा हुआ था। राम का नाम लेकर एक! दो! तीन! हम तीनों बारी-बारी नीचे कूद पड़े। वर्फ ने हमारे पांवों को सहारा दिया किन्तु आँखों का सहारा (बत्ती) बुझ चुका था। अंधेरे में मार्ग टटोल-टटोल कर उतरने के अतिरिक्त कोई और चारा न था। हमने बड़ा यत्न किया कि किसी प्रकार रस्सी हाथ लग जाए, किन्तु सब व्यर्थ। हम चलते गये, बढ़ते गये। ठीक रास्ते पर या गलत रास्ते पर, यह हमें पता न था। हम केवल यही जानते थे कि हम ऊपर से नीचे उतर रहे हैं।

डूबते को तिनके का सहारा मिला। सहसा मेरा हाथ रस्सी पर पड़ा। अब हमें विश्वास हो गया कि हम मार्ग भटक नहीं गये अपितु कैंप तक पहुँच ही जाएंगे। और हम पहुँच भी गये। ठिठुरे

हुए तो हम थे ही। जाते ही हम सोने के थैलों में घुस गये और मुरब्बे के साथ डिब्बे का दूध पीने लगे। दूध के एक-एक घूंट के साथ नींद की खुमारी बढ़ती गई और हम ऐसी गाढ़ी नींद सोये कि उषा की पहली किरण के साथ हमारी आंखें खुलीं।

हम नार्थपोल के तीसरे कैंप की ओर उतर रहे थे कि हमें अपने दल के चार व्यक्ति सामने से आते हुए दिखाई दिये। आगे-आगे पथप्रदर्शक शेरपा तेजपाल था और पीछे आक्सीजन के यन्त्र बांधे हुए मिस्टर ब्रूस, जार्ज फिंच और डाक्टर वेकफील्ड थे। हमने उन्हें अपना अनुभव बताया और हमें पता चला कि वे लोग हमारे अनुभव से लाभ उठाकर एवरेस्ट के शिखर तक पहुँचने के लिये आगे जा रहे हैं। वे लोग बड़े उत्साह से आगे बढ़े और गोरखा तेजपाल हमारे पहुँच-स्थान से भी २०० फुट अधिक ऊंचाई तक पहुँच गया। किन्तु शिखर तक कोई भी न पहुँच सका।

दल का दूसरा प्रयत्न भी निष्फल गया किन्तु हृदय से साहस न गया था। हमने चोटी तक पहुँचने का तीसरा प्रयत्न करने का निश्चय कर लिया।

बरसात का मौसम आरम्भ होने वाला था, इसलिए देर करना हितकर न था। दल के कई सदस्य इतने बीमार हो चुके थे कि उन्हें उपचार के लिए दार्जिलिंग भेजना पड़ा। स्वयं कैप्टेन ब्रूस और नार्टन भी इतने अशक्त हो चुके थे कि उन्होंने आधार-कैंप में ही रहना उचित समझा। मैं, समरवेल और फिंच आदि छः

पर्वतारोहियों का स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अच्छा था। हमने सोचा शिखर तक जाने का मार्ग तो हम पा ही चुके हैं। सम्भव है कि एक बार के और प्रयत्न से हम एवरेस्ट की चोटी तक पहुँच ही जाएँ। फिर......विजय..... हर्ष..... उल्लास! इस विचार ने हमारी रही-सही थकान को भी उत्साह में बदल दिया। ३ जून को हम १४ कुलियों को साथ लेकर तीसरी कोशिश के लिये रवाना हो गये।

मौसम मानो हमारा हौसला पस्त करने के लिये अड़ गया था। लगातार ३६ घंटों तक बर्फ गिरती रही। वह एक क्षण के लिये भी नहीं रुकी। फिर हम क्यों रुकते? हम भी छाती तानकर आगे बढ़ते ही गये—ऊपर चढ़ते ही गये। बर्फ के साथ इस कठिन मुकाबिले में जार्ज फिंच सर्दी खागया और रास्ते से ही उसे नीचे लौट आना पड़ा।

उस दिन हम शेष पांच कुलियों की सहायता से नार्थपोल की जड़ तक ही पहुँच सके और वहां तीसरा कैंप स्थापित कर भी लिया। अगले दिन आकाश निर्मल था। एक ओर से दूसरे छोर तक एक भी बादल दिखाई न देता था। सूर्य पूरे वेग से चमक रहा था। पवन भी मानों अलसा गया था। ऐसा दिन पर्वतारोहियों को बड़े नसीबों से मिलता है, किन्तु हम थके हुए थे। वह दिन हमने थकान उतारने में बिता दिया। सुबह जागे तो सूर्य तो तब भी चमक रहा था किन्तु भाग्य का सितारा डूब चुका था। हमारा अपना बल तो सर्दी ने हर लिया था किन्तु आशा का जोश कम न

था। हाथों से कुल्हाड़ा चलाते हुए और पीठ पर बोझ लादे हुए हम लोग आगे बढ़ने लगे। २७२०० फुट की ऊंचाई पर एक जगह ऊंची चढ़ाई थी। हम लोग ऊपर चढ़ गये किन्तु कुलियों के लिए अधिक भार लेकर चढ़ना कठिन था। हमने उनके लिए नीचे से ऊपर तक रस्सियों की सीढ़ियाँ बांध दीं। चौदह कुलियों के अट्ठाइस कदम एक साथ सीढ़ियों पर उठने लगे। सबकी आंखें ऊपर, चोटी पर लगी थीं जहाँ हमारी विजय-श्री खड़ी मुस्करा रही थी। आंखें खुली थीं, तो भी हम स्वप्न देख रहे थे—अपनी सफलता का। कुछ ही क्षणों में हम संसार के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने वाले थे।

एवरेस्ट ने एक भयंकर अट्टहास किया जो हमारे कानों तक न पहुँचा, किन्तु वह हमारी किस्मत से अवश्य टकराया। हमारी किस्मत टूक-टूक होकर बिखर गई और उसके साथ ही रस्सियों की नाजुक सीढ़ी भी। जिस सीढ़ी पर हम लोग ऊपर चढ़ने के लिए कदम जमा रहे थे वह धड़ाम से नीचे को जा गिरी और उस के साथ चौदह कुली भी कई सौ फुट नीचे लुढ़क गये। पहले तो हमें कुछ सूझा ही नहीं कि यह क्या से क्या हो गया, किन्तु दूसरे ही क्षण हमने देखा कि बर्फ का एक बड़ा तोदा ऊपर से लुढ़कता हुआ नीचे पहुँचा और बेलन की तरह उन कुलियों को पीसता हुआ एक खड्डे में जा गिरा। मनुष्य की निर्बलता का अनुभव हमें पहली बार हुआ। हम अपने साथी कुलियों को पिसते हुए देख रहे थे किन्तु कुछ कर न सकते थे।

हमारे देखते-देखते वे बर्फ के नीचे दबकर अदृश्य होगये। हम ऊपर चढ़ना भूल गए और हम लोग अपने साथियों के, कम से कम, शव निकालने के लिए नीचे उतरने लगे। यदि हम विजयी होकर नीचे उतरते तो उतराई हमारे लिए खेल होती, किन्तु अब तो वह चढ़ाई से भी अधिक बोझिल दिखाई देने लगी। हाथ-पांव कांप रहे थे, एक तो सर्दी से और दूसरे इस भयानक दृश्य को देखकर। चौदह में से केवल तीन कुली जीवित निकाले जा सके। शेष ग्यारह बर्फ के नीचे इतने दब चुके थे कि उनके जीवित बच निकलने की बिल्कुल सम्भावना न थी। फिर भी उन के शव तो निकालने ही थे। कई घंटों के लगातार प्रयत्न के बाद दस शव तो मिल गये किन्तु एक का कुछ पता न चला। कहाँ हम विजय के जयघोष बजाने को आगे बढ़ रहे थे और कहाँ अब मातम मनाते हुए नीचे लौटने लगे। एवरेस्ट के इतिहास में हम सबसे बड़ी बलि देकर भी निराश लौट रहे थे। मानव रुधिर से शायद देवता प्रसन्न न हुए थे। वे और रुधिर मांगते थे, और बलि चाहते थे।

तीसरा अभियान

(१९२४)

कहते हैं "तीसरी बार शुभ होती है।" देखना यह था कि वह किस के पक्ष में शुभ सिद्ध होती है—पर्वतारोहियों के या पर्वत के। ब्रूस को विश्वास था कि अब बाजी उसी के हाथ रहेगी—क्योंकि पिछली बार वह एवरेस्ट का सुराग़ पा चुका था और ऊंचाई पर इन्सानी कमजोरियों को पहचान चुका था। फिर, वह चोटी से कोई बहुत दूर भी तो न रह गया था? २००० फुट भी क्या कोई बड़ी ऊंचाई है। यदि बर्फ की दुर्घटना न होती तो मैलोरी, नार्टन, समरवेल जैसे उसके साथियों के लिए यह दो-एक घंटे का खेल ही तो था। बस, इसी आशा ने ब्रूस को फिर प्रोत्साहित किया। जिस प्रकार हारता हुआ जुआरी बढ़-बढ़कर दांव लगाता है उसी प्रकार ब्रूस भी एवरेस्ट पर चढ़ने के लिए अपना पूरा जोर लगा देने का निश्चय कर चुका था। पिछली बार एक दुर्घटना के कारण उसके दिल में जो अरमान रह गया था उसे इस बार वह अपनी जबरदस्त तैयारियों के बल पर पूरा करना चाहता था।

उसने इतना पूर्ण प्रबन्ध कर लिया कि पिछली बार जो गलती हुई थी वह इस बार न हो।

जनरल ब्रूस स्वयं दल के नेता बने।

नार्टन उपनेता।

मैलोरी और समरवेल पुराने साथी।

और ओडियल, इरवाइन आदि दस नये पर्वतारोही दल में सम्मिलित किये जिनमें चार गोरखे भी थे।

दल की छुटपुट तैयारियों का एक उदाहरण देखिये। ब्रूस ने दार्जिलिंग पहुँच कर चुने हुए ३०० शेरपा इकट्ठे किये। उनमें से भी योग्यतम ७० कुलियों को चुना। ब्रूस ने कुलियों का चुनाव करते हुए यहां तक देखा कि वे नाटे और इकहरे बदन के हों, क्योंकि उसका अनुभव था कि मोटे-ताजे कुली स्वस्थ होते हुए भी शीघ्र ही दम तोड़ देते हैं, जबकि हलके-फुलके कुली दृढ़ता से चढ़ाई चढ़ सकते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि ब्रूस ने छोटी-छोटी बातों को इतनी बारीकी से देखा, फिर बड़ी बातों का तो कहना ही क्या? २५ मार्च सन् १६२४ को यह दल दार्जिलिंग से रवाना हुआ।

ब्रूस चला था दुनिया के सबसे बड़े पहाड़ से टक्कर लेने किन्तु स्वयं मार्ग में एक छोटे से मच्छर से परास्त हो गया। वह तिब्बत का प्रारम्भिक मैदान पार करते-करते मलेरिया का शिकार हो गया और वहां से उसे दार्जिलिंग लौट आना पड़ा। यदि ब्रूस दल के साथ होता भी तो सिवाय अपने साथियों का साहस

बढ़ाने और कुलियों की पीठ थपथपाने के, वह अधिक कुछ न कर सकता था। वह दल का नेता और प्रबन्धक अच्छा था, किन्तु पर्वत पर अधिक ऊँचा चढ़ने का अनुभव उसे न था। ब्रूस की जगह अब नार्टन दल का अगुआ बना। वह वीर भी था, साहसी भी और अनुभवी पर्वतारोही भी।

पिछली दो चढ़ाइयों में यह देखा गया था कि दार्जिलिंग से लेकर नार्थपोल की जड़ तक तीन पड़ाव तय करने में बीसियों दिन लग जाते हैं और दल की आधी शक्ति यहीं खर्च हो जाती है। इस बार नार्टन अपने दल को छः दिन के भीतर ही भीतर तीसरे पड़ाव अर्थात् २१००० फुट की ऊँचाई तक ले गया। दूसरे पड़ाव तक तो वे सही-सलामत पहुँचे किन्तु इसके बाद वे एक कदम आगे बढ़ाते तो दो कदम पीछे हटना पड़ता। वे हिम्मत बांधकर ऊपर चढ़ने की योजना बनाते तो हिमालय एक ही धक्का लगाकर उन्हें नीचे धकेल देता।

दिन व्यर्थ बीतते देखकर नार्टन ने मौसम के खराब रहते हुए भी हिमालय के विरुद्ध मोर्चा लगाने की ठानी। मैलोरी और इरवाइन को २० शेरपा कुली साथ देकर कहा—"आप लोग तीसरे पड़ाव पर जाकर कुछ दिन तक विश्राम करें ताकि आप लोग वहां की ठंडी और पतली हवा से कुछ हिलमिल जाएँ और अधिक ऊँचाई पर चढ़ने में आप पर पतली हवा का वह बुरा प्रभाव न हो जो एकदम मैदान से पहाड़ पर चढ़ने वालों पर

हुआ करता है। दूसरी टुकड़ी के साथ मैं भी पीछे-पीछे आता हूँ।"

योजना तो अच्छी थी किन्तु पहली टुकड़ी के ऊपर पहुँचते ही बर्फ़ के तूफ़ान उमड़ने लगे। बर्फ़ीली बौछारों ने दूसरी टुकड़ी के पैरों में बेड़ियां डाल दीं और वह एक कदम भी आगे न बढ़ सकी। अंधड़ के कारण तम्बू से बाहर झांकना भी कठिन हो गया था। इधर पहली टुकड़ी तीसरे पड़ाव में कैद हो गई थी। आगे पांव बढ़ाने के योग्य रही, न पीछे। भोजन की यह दशा थी कि उनके पास मुश्किल से एक समय की सामग्री बच रही थी। किसी समय भी उनकी जान पर बन सकती थी। अब क्या बने? ऐसी अवस्था में भगवान ही सहायता का हाथ बढ़ाते हैं। जब मनुष्य अपना पूरा बल लगाकर भी हार जाता है तो भगवान सहारा देते हैं। दूसरी प्रातः तूफ़ान कुछ देर के लिये रुक गया। मैलोरी को नीचे की भी चिन्ता थी कि न जाने उन लोगों पर क्या बीती होगी? वह अपने कुलियों को लेकर तीसरे पड़ाव से दूसरे पड़ाव में पहुँचा। सब कुली अधमुए से पड़े थे। कल के अंधड़ से किसी को निमोनिया हो गया था, किसी के पांव को पाला मार गया था, किसी की समूची टाँग ही सुन्न हो गई थी, किसी की आँखें बर्फ़ की चकाचौंध से अंधी हो गई थीं और कोई बुखार में बेहोश पड़ा था। मतलब यह कि दल का कोई भी सदस्य भलाचंगा न रहा था। उधर आकाश में अफ़गानिस्तान की ओर से गहरे तूफ़ान के लक्षण दिखाई दे रहे थे। उन्हें विवश होकर दूसरे पड़ाव से

पहले में, और पहले से आधार-शिविर में उतर आना पड़ा। ऐसे ही कुसमय के लिए नार्टन ने आठ कुली पहले से ही रिजर्व रख छोड़े थे। उन्होंने सारे दल की देख-भाल अपने जिम्मे ली। सौभाग्य से इसी समय इंडस्टन रोगी ब्रूस को दार्जिलिंग छोड़कर लौट आया था। उसके प्रयत्नों से शेष तो सब सदस्य राजी हो गये, केवल मानबहादुर और शमशेर ये दोनों गोरखे चल बसे।

स्वाभाविक ही था कि अब दूसरे कुलियों का साहस भी जाता रहता। उन्हें फिर से उत्साहित करने के लिए उन्हें एक उपाय सूझा। उन्होंने बिहार के लामा से प्रार्थना की कि वे दल को अपना आशीर्वाद प्रदान करें। लामा ने स्वीकार कर लिया। सारा का सारा दल एक मन्दिर में इकट्ठा हुआ। एक-एक व्यक्ति आगे बढ़ कर लामा के सामने झुकता जाता था और बड़े लामा अपने पवित्र चांदी के पहिये से उसके सिर को छूकर आशीर्वाद देते जाते थे। इस बात ने कुलियों के उखड़े उत्साह पर जादू सा असर किया, विशेष कर जब दूसरे दिन घिरे बादल भी छंट गये और निर्मल नीले आकाश में सूर्यदेव अपने पूरे तेज से चमकने लगे तो कुलियों के मुरझाए हुए चेहरों पर फिर से मुस्कराहट खेलने लगी।

२० मई हो चुकी थी। मैलोरी, नार्टन, समरवेल और ओडियल ने कुलियों को साथ लेकर जल्दी-जल्दी तीन पड़ाव पार कर लिए और उस स्थान पर जाकर रुक गये जहाँ १९२२ में बर्फ फटी थी। अब तक वह खाई बर्फ से कुछ-कुछ भर चुकी थी, फिर भी हमें

नीचे उतरकर २०० फुट ऊपर सीधी चढ़ाई चढ़ने में एक घंटा लग ही गया। आगे रास्ता सरल था, अतः पार्टी जल्दी-जल्दी चौथा पड़ाव डालने के लिए आगे बढ़ने लगी।

आधी पार्टी कुछ आगे थी और आधी पार्टी पीछे। इसी समय धुआंधार बर्फ गिरने लगी। तूफ़ान ने पहले अंधड़ को भी मात कर दिया। ऊपर के साथी ऊपर रह गये और नीचे के नीचे। यदि शीघ्र ही बचाव का कोई यत्न न किया जाता तो ऊपर वाले मौत के मुँह में पड़ सकते थे। नार्टन और समरवेल ने ऊपर वालों को बचाने के लिए सिर-तोड़ यत्न किया। कुली तो बच गये किन्तु ये दोनों पर्वतारोही कठिन श्रम के कारण हद से ज्यादा थक गये। ऊपर चढ़ना एक भारी बोझ दिखाई देने लगा। फिर भी नार्टन ने सोचा—

"जब कदम आगे बढ़ाया तो पीछे क्या हटाना।"

१ जून को प्रातः ६ बजे वह समरवेल और कुछ कुलियों को साथ लेकर आगे बढ़ा। सूर्यास्त तक वह चढ़ते-चढ़ते २६८०० फुट की ऊँचाई तक चढ़ गया। दूसरे दिन भी उसने चढ़ाई जारी रखी। सौभाग्य से दिन भी सुहावना था। केवल हल्की-हल्की हवा चल रही थी। नार्टन को कुछ-कुछ विश्वास हो चला था कि वह चोटी तक पहुँच जाएगा किन्तु २७५०० फुट की ऊंचाई तक पहुँचते-पहुँचते उसे आँखों से एक एक के दो दो दिखाई देने लग गये। पतली हवा और आक्सीजन की कमी ने उसके दिमाग़ पर असर कर दिया था। अब उसे कदम रखने में भी भय प्रतीत होने लगा

कि कहीं गड्ढे को समतल समझ कर वह उसी में न लुढ़क पड़े।

नार्टन ने अपनी सहायता के लिये समरवेल की ओर देखा तो उसे बर्फ पर एड़ियां रगड़ते पाया। पतली हवा का असर उसके गले पर हुआ था और उसे सांस लेने में भी कठिनाई हो रही थी। नार्टन ने उसे नीचे लौटा दिया किन्तु एवरेस्ट को अपने इतने निकट देख कर नार्टन का अपना मन लौटने को न हुआ। वह अपने दिमाग़ की श्रेंकें कस कर ज़बरदस्ती आगे बढ़ने लगा। दोपहर के एक बजे वह २८१२६ फुट की ऊंचाई तक जा पहुँचा।

इतनी ऊंचाई पर भी मनुष्य जीवित रह सकता है यह नार्टन ने पहली बार अनुभव किया, किन्तु मनुष्य का दिल और दिमाग़ भी इतनी ऊंचाई पर ठीक रह सकते हैं यह नार्टन अपने उदाहरण से साबित न कर सका। उसका सिर चकराने लगा था और उसकी सोच-पहिचान की शक्ति जाती रही थी। एवरेस्ट की चोटी उसके बिल्कुल सामने खड़ी थी—कुछेक कदम—कुछेक फुट—किन्तु नार्टन की किस्मत में विजय का सेहरा न लिखा था। वह दहलीज़ तक पहुँचकर भी वापस लौट आया। वह विजय-श्री के दर्शन न कर सका। आधे होश में वह नीचे उतर आया।

नार्थपोल के पास उसे मैलोरी और इरवाइन आते हुए दिखाई दिये। उनके कंधों पर आक्सीजन के यन्त्र थे और कुछ दूरी पर ओडियल भी कुलियों सहित आ रहा था। नार्टन पर जो बीती थी उसने वह मैलोरी को कह सुनाई। ओडियल पाँचवें पड़ाव पर आकर रुक गया क्योंकि वह मैलोरी और इरवाइन को

सहायता पहुँचाने ही आया था । वे दोनों आगे ही आगे बढ़ते गये । ७ जून को छठे पड़ाव पर पहुँच कर मैलोरी ने अपनी कुशलता का यह सन्देश ओडियल को पाँचवें कैंप में भेजा—

प्रिय ओडियल,

हम दोनों सकुशल हैं । आते आते हमारा चूल्हा (कुकर) हाथ से फिसल कर एक खाई में गिर गया है । अब हम बिना चूल्हे के हैं । खैर, कोई बात नहीं । कल सांझ तक चौथे पड़ाव में हमारी प्रतीक्षा करना । आशा है तब तक हम लौट सकेंगे । मैं जल्दी में अपनी कम्पास कहीं तम्बू में भूल आया हूँ । परमात्मा के वास्ते उसे सम्भाल लेना क्योंकि हमारे पास और कम्पास नहीं है । इन दो दिनों में दो नालियों वाले आक्सीजन यन्त्र ने बड़ा आराम पहुँचाया लेकिन उसका बोझ कंधे पर उठा कर चलना बड़ी मुसीबत है । मौसम अभी तक तो अनुकूल है, देखिये आगे क्या होता है ।

तुम्हारा
जी० मैलोरी

यह मैलोरी का अन्तिम पत्र था । इसके बाद वह सदा के लिये संसार की आँखों से ओझल हो गया । और उसके साथ इरवाइन भी । वे दोनों वीर उस स्थान पर समाधि पा गये जहाँ धरती की ऊंचाई समाप्त होती है और स्वर्ग की चढ़ाई आरम्भ । अपने शरीर को पृथ्वी की उच्चतम चोटी के समीप छोड़कर उन दोनों ने अपने दिव्य-देह से स्वर्ग में प्रवेश किया । उनके स्वर्गारोहण का अलौकिक दृश्य पाँचवें पड़ाव में बैठा ओडियल अपनी

दूरबीन के द्वारा देख रहा था। यह लिखता है—

"एवरेस्ट के दूधिया रंगमंच पर जीत और हार के बीच एक अलौकिक नाटक खेला जा रहा था। मैं एकाकी दर्शक की भांति खड़ा अपना हृदय थामकर उसे देख रहा था—इसका उपसंहार कहाँ है ?

८ जून, १२ बज कर ५० मिनट का समय था, जब दूर श्वेत हिमालय शिखर के पास मैंने दो श्याम बिन्दुओं को सरकते हुए देखा। निश्चय ही ये मैलोरी और इरवाइन थे। वे तेजी से आगे बढ़ते जा रहे थे। दो क्षण के लिए वे बिन्दु स्थिर हो गये, शायद कुहरे ने उनका मार्ग रोक लिया था। दूसरे ही क्षण वे फिर आगे बढ़ने लगे। अब की बार पहले से भी तेज। जिस शीघ्रता से वे बढ़े जा रहे थे उससे भी मुझे सन्देह होने लगा था कि दिनमणि दिवाकर के आकाश में रहते रहते वे शिखर तक नहीं पहुंच सकेंगे। लौटते हुए यदि रात पड़ गई, तूफान उठ खड़े हुए, बर्फ गिरने लगी तो ? यह सोचते ही मेरा दिल धड़कने लगा। जी में आया कि उन्हें चिल्लाकर कहूँ ,'लौट आओ। अंधेरा मुँह बाए बढ़ा आ रहा है। क्यों अपने सुरक्षित लौटने की सम्भावना को हाथ से खो रहे हो ?' किन्तु वे बढ़े ही जा रहे थे—अपने प्राणों को खतरे में डालकर भी। वहाँ सोच और विचार का स्थान नहीं था। वहाँ तो जीत और हार की बाजी थी। यह शिखर एक बार मैलोरी को हरा चुका था किन्तु इस बार वह मैलोरी के सम्मुख खड़ा था। वह २८२२७ फुट की ऊंचाई तक पहुँच चुका था और शिखर १००० फुट से कम

दूरी पर रह गया था। कुछ कदम और—और विजय मैलोरी की। इसीलिए वह बेतहाशा बढ़ा जा रहा था। यदि उसे अपनी विजय में तनिक भी सन्देह होता तो वह अवश्य समय रहते लौट आता, किन्तु उसे तो पूर्ण विश्वास था।

इसी समय दृश्य बदला। एक थकी-मांदी सी छाया कुल्हाड़े के साथ दुहरी होकर बर्फ की ओर लपकी। मैंने छाया को झुकते हुए देखा किन्तु उठते हुए नहीं। मैंने दूरवीन उतार कर फैंक दी और आंखें फाड़-फाड़कर देखा, किन्तु रंगमंच पर पर्दा पड़ चुका था। बादलों के शुभ्र आवरण ने उस स्वर्गीय दृश्य को मानव की आंखों से ओझल कर दिया था। काश कि तब मेरी आंखें उस आवरण को चीरकर उसके पार देख सकतीं कि विपत्तियों के साथ तुले युद्ध में वीरता और पौरुष की विजय किस प्रकार हुआ करती है।

एक और हाथ उठा। शायद यह भी मृत्यु से आलिंगन करने के लिये ही था। बर्फ पर कुल्हाड़े का प्रहार करने से पहले ही उसका कुल्हाड़ा लुढ़क कर कहीं दूर जा पड़ा। कुल्हाड़ा गिरा, शरीर गिरा किन्तु साहसी आत्मा तिल भर भी न झुकी। वह मृत्यु को रौंदती हुई, बर्फ से ऊपर—शिखर से आगे—और सितारों को भी लांघकर दिव्यलोक में जा विराजी। आज भी हिमालय इस रहस्य को छिपाये है कि विजय किस की हुई? वे दोनों वीर शिखर तक पहुँचे या नहीं? मेरा हृदय कहता है कि वे पहुँचे होंगे और अवश्य पहुँचे होंगे।

इस दृश्य को देखकर ओडियल की आंखों के आगे अँधेरा

छा गया। किन्तु हृदय में अभी भी आशा की एक चिंगारी टिमटिमा रही थी "शायद मैलोरी और इरवाइन शिखर तक पहुँच ही गये हों और छठे पड़ाव में थके-माँदे मेरी राह देख रहे हों।

आशा का सम्बल लिये वह दूसरे दिन छठे पड़ाव तक फिर गया। काँपते हाथों से उसने तम्बू का पर्दा उठाया किन्तु भीतर शान्ति छाई हुई थी। ओडियल ने अपने मुँह को हाथों में छिपा लिया और लौट पड़ा। फिर घूमकर उसने उधर देखने का साहस न किया।

नौ वर्ष बाद १६३३ वाले ह्यू रटलेज के चौथे दल को एक कुल्हाड़ा बर्फ में पड़ा हुआ मिला। यह मैलोरी का था।

पहली उड़ान

इग्लैण्ड की बात है। एप्रिल सन् १९३२ की एक दोपहर को मिस्टर एल० बी० एस० ब्लैकर किसी विशेष कार्य से लेडी हौस्टन के बंगले पर पधारे। दोनों में बड़े उत्साह से बातचीत चल रही थी। विषय बड़ा ही मनोरंजक था।

ब्लैकर—मुझे एक नया विचार सूझा है, श्रीमती हौस्टन !

लेडी हौस्टन ने मुस्कराते हुए कहा—होगा कोई नया पागलपन ! सुनूं तो, कौनसा है नया विचार तुम्हारा ?

ब्लैकर—एवरेस्ट पर हवाई जहाज द्वारा उड़ान करने का।

लेडी हौस्टन खिलखिला कर हँस पड़ी—ह......ह: ह: ह: ! भगवान् को दुआएं दो कि वह तुम्हें चिड़िया बना दे और तुम अपने नन्हे पंख फड़फड़ाते हुए नदियों-नालों, पहाड़ों और जंगलों की सैर किया करो।

ब्लैकर—पंखों की क्या आवश्यकता है ? हजारों पंखों के बराबर यह बुद्धि भगवान् ने मुझे किस लिए दी है ?

लेडी हौस्टन—बस फिर तुम्हें पंखों की कोई आवश्यकता

नहीं। कवियों की तरह आंगन में बैठे-बैठे कल्पना की उड़ानें लिया करो, बादलों के उड़न-खटोले पर झूला करो और चांद-सितारों को चुनकर हवाई किले बनाया करो।

ब्लैकर—कवि की कविता के लिये मेरे हृदय में कोमलता भी तो नहीं।

लेडी हौस्टन—कोमलता नहीं तो पत्थरों, तूफ़ानों और आंधियों की भयंकरता तो होगी ही!

ब्लैकर—निश्चय ही ये सब भयंकरताएं मेरी आंखों के सामने हैं किन्तु हृदय में है केवल एक साहस जो इन सबको खेल समझ कर उन्हें जीत लेना चाहता है—तूफ़ानों की खिलवाड़ में।

लेडी हौस्टन—शाबाश ब्लैकर! शाबास! इधर आओ, यह सुन्दर वाक्य सुनाने के लिये मैं तुम्हारी पीठ थपथपा दूँ। इसी आशा से तुम मेरे पास आये हो न?

ब्लैकर—कुछ इसके लिये और कुछ आपको निमन्त्रण देने के लिये।

लेडी हौस्टन—कहां का?

ब्लैकर—एवरेस्ट पर उड़ान करने का।

लेडी हौस्टन—मृत्यु का निमन्त्रण क्यों नहीं कहते? यह उड़ान तुम्हें ही मुबारक हो। मैं तो अपने हाथों अपनी क़ब्र खोदने को तैयार नहीं।

ब्लैकर—तनिक आप कल्पना तो कीजिये—जब हम संसार के सबसे ऊँचे पर्वत-शिखर पर उड़ान करके लौटेंगे तो पहली

उड़ान में सफलता का श्रेय एक महिला को होगा—श्रीमती हौस्टन को! क्या यह आपके गौरव का विषय न होगा।

लेडी हौस्टन—न बाबा, यह श्रेय मुझे नहीं चाहिये। मैं तो अखबार में एक नया समाचार पढ़कर ही सन्तोष कर लूंगी।

ब्लैकर—सचमुच आप सरीखी हँसमुख महिलाएं मैंने बहुत कम देखी हैं। मुझे आशा है कि इस कार्य में आप हमारा विशेष उत्साह बढ़ा सकेंगी।

लेडी हौस्टन—वाह, क्यों नहीं? "जंग बहादुर" "राय बहादुर" शेर, विजयी, ब्लैकर शाबाश! बढ़ चलो। बोलो और कौन-से शब्द बोलकर मैं तुम्हारा उत्साह बढ़ा सकती हूँ? तुम्हीं बताओ, ब्लैकर!

ब्लैकर—आशीर्वाद भरे शब्दों से, और सहायता देकर।

लेडी हौस्टन—हां, इतना करने को मैं तैयार हूँ, लेकिन पहले एक बात बताओ।

ब्लैकर—क्या?

लेडी हौस्टन—इस काम में तुम्हें हासिल क्या होगा? तुमसे पूर्व भी तो चार दल एवरेस्ट पर चढ़ने के लिये जा चुके हैं। इरवाइन, मैलोरी, और कई शेरपाओं को क्या मिला? वर्फ के रेगिस्तान में मृत्यु ही न?

ब्लैकर—वह मृत्यु नहीं, श्रीमती हौस्टन! वही मानव की अमरता है। इरवाइन, मैलोरी और शेरपाओं के आख्यान लाखों और करोड़ों वर्षों तक बुज़दिलों के दिलों में भी साहस और

उत्साह की प्रेरणा देते रहेंगे और जब तक ये सूरज और चाँद आकाश में चमकते हैं तब तक उन वीरों का नाम भी संसार में अमर रहेगा। आगे आने वाली पीढ़ियां उनकी कहानी पढ़कर वीरता का सबक़ सीखेंगी और जीवन के किसी भी क्षेत्र में विपत्तियों को देखकर डर न जाया करेंगी, अपितु उन पर विजय पाने के लिये आगे बढ़ा करेंगी। मनुष्य संसार में विपत्तियों के, प्रकृति के, तथा कठिनाइयों के आगे झुकने के लिये पैदा नहीं हुआ अपितु उन पर विजय पाने के लिये। फिर यदि एवरेस्ट का शिखर आसमान में अपना मस्तक उठाए हमें चुनौती देता रहे और हम उसकी महानता के सामने सिर झुकाते रहें तो क्या यह मनुष्यता की हार नहीं, हमारे उत्साह की पराजय नहीं?

लेडी हौस्टन—ब्लैकर! मुझे तुम में इरवाइन और मैलोरी की आत्मा दिखाई देती है। तुम्हारी इस विजय-यात्रा में मैं भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि वह तुम्हें सफलता प्रदान करे! यह लो, तुम्हारे लिये यह मेरी तुच्छ-सी भेंट प्रस्तुत है।

इस प्रकार लेडी हौस्टन ने व्यय का भार अपने ऊपर लिया। एवरेस्ट पर उड़ान के लिये विशेष हवाई जहाज़ चाहियें थे जिनके इंजिन काफी सर्दी में भी काम कर सकें और जिनमें ऊंचे वातावरण में फोटो लेने का भी प्रबन्ध हो। यूं तो अमेरिका में ऐसे जहाज़ बन चुके थे जिन्होंने १९३० में चालीस हज़ार फुट की ऊँचाई तक उड़कर एक रिकार्ड स्थापित कर दिया था, किन्तु वे इतना वज़न साथ न ले जा सकते थे जितना कि एवरेस्ट पर उड़ने

के लिये आवश्यक था। इसलिए दो विशेष जहाज़ बनवाये गये। इन जहाज़ों में उड़ान करने वालों के लिये पहनने के कपड़ों से लेकर मोज़े, दस्तानों और मुंह के नक़ाबों तक का बिजली द्वारा गर्म रखने का प्रबन्ध किया गया। टेलीफ़ोन, ऑक्सीजन और कैमरे विशेष रूप से सजाये गये।

मार्च १९३३ में नैपाल के पूर्णिया ज़िले में उड़ाकुओं का दल इकट्ठा हुआ। पहले जहाज़ में मिस्टर क्लाइडस्टेल विमानचालक और मिस्टर ब्लैकर फ़ोटोग्राफ़र थे। दूसरे जहाज़ में मिस्टर मैकिन्टरा, विमानचालक और मिस्टर बोनेट फ़ोटोग्राफ़र थे। उड़ान करने का लक्ष्य था एवरेस्ट के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करना और ऊपर-नीचे, सीधे-तिरछे सब ओर से एवरेस्ट के चित्र लेना ताकि उन्हें जोड़कर शिखर का एक पूरा नक्शा तैयार किया जा सके और पर्वतारोहियों के लिये किसी सम्भव मार्ग की तलाश की जा सके।

जब १९३३ वाला रटलेज का दल पैदल ही एवरेस्ट पर चढ़ने का यत्न कर रहा था, उसी समय पहला हवाई जहाज़ उन्होंने चोटी की ओर जाता हुआ देखा। यह जहाज़ ३ एप्रिल को धरती से उड़ा और बड़ी सफलता से ऊपर की ओर चढ़ चला। ऊँचाई पर सर्दी की अधिकता कोई नई चीज़ न थी। उसने बिजली की गर्मी को छेद कर कंबलों, जुराबों और दस्तानों को पार करके भी उड़ाकुओं के हाथ-पांव को सुन्न कर दिया। किन्तु इसकी तो उन्हें पहले ही आशा थी। जो नई बात उड़ाकुओं ने देखी उसका वर्णन

क्लाइडस्डेल के शब्दों में सुनिये—

हमारा वायुयान ३१,००० फुट की ऊँचाई पर जा पहुँचा, अर्थात् एवरेस्ट से भी बहुत ऊपर। हमें एवरेस्ट-शिखर पर उभरा हुआ, बहुत ऊँचा कुछ सफ़ेद-सफ़ेद धुंधला-धुंधला दिखाई दिया। हमने समझा कोई बादल होगा। हमने अपना वायुयान उसमें धंसा दिया और आन की आन में हमारा वायुयान शिखर से केवल १०० फुट ऊपर लड़खड़ाने सा लगा। जिसे हम एवरेस्ट का बादल समझे थे वास्तव में वह एक सीधी तिरछी हवाओं का बवण्डर निकला। बर्फ़ के नुकीले खंड उड़-उड़कर हम पर गोलियों की तरह बरसने लगे। उनकी बौछार में इतनी तेजी थी कि यान के पिछले भाग में कई पुर्जे कड़कड़ाने लगे। बवण्डर के थपेड़ों में एक बार तो हमारा जहाज़ चालक के काबू से बिल्कुल बाहर हो गया। यदि हम एक सैकिंड भी चूकते तो हमारे दो शव भी उन चौदह पर्वतारोहियों के शवों में जा मिलते जो उस भयंकर शिखर पर चढ़ते हुए कई वर्ष पहले अपने प्राणों की बलि दे चुके थे।

किन्तु वहां तो मरने के विषय में भी सोचने का समय न था। जहाज के पुर्जों के समान चालक की अंगुलियां भी एक यन्त्र बनकर घूमने लगीं। मैंने भी सर्दी से सुन्न अपने हाथों को कैमरे की ओर बढ़ाया और टिक, टिक, एक साथ कई चित्र ले लिये। यह सब कुछ एक ही क्षण में हो गया और दूसरे ही क्षण हमने अपने आपको उस बवण्डर से दूर निर्मल आकाश में पाया।

हमारा जहाज १४० मील प्रति-घंटे की गति से उड़ रहा था। नीचे जाकर हमने चित्र साफ़ किये तो हमारी निराशा का ठिकाना न रहा। ये चित्र एवरेस्ट के न थे अपितु उससे साढ़े बारह मील दूर स्थित मैकालू नामक शिखर के ले लिये गये थे। उनमें से भी अधिकतर चित्र धुंध के प्रभाव के कारण बिल्कुल स्पष्ट भी न थे। सारांश यह कि हम जिस उद्देश्य को लेकर एवरेस्ट पर उड़े थे वह पूरा न हुआ था। हां, हमें यह पता अवश्य चल गया था कि इतनी ऊँचाई पर भी वायुयान उड़कर सकुशल वापस आया जा सकता है।

अब दूसरी उड़ान की तैयारी की गई।

१९ एप्रिल १९३३ को दूसरा विमान एवरेस्ट पर उड़ने के लिये चला। इस बार चालक को आदेश दिया गया कि वह चोटी के सीधे ऊपर न उड़कर दाएं-बाएं के कोनों से शिखर के चित्र ले। जब यह विमान धरती से ऊपर उड़ा तो उसने रौंगबुक ग्लेशियर के पास एक पैदल दल को भी ऊपर की ओर चढ़ते हुए देखा। १९००० फुट की ऊंचाई पर विमान गहरी धुंध में फंस गया। सौभाग्यवश यह धुंध थोड़ी ही दूर तक थी और उसके समाप्त होते ही विमान निर्मल नीले आकाश में उड़ने लगा और २४००० फुट की ऊंचाई तक जा पहुंचा।

उड़ाकुओं के सामने शिखरों की श्वेत पंक्ति थी। एक के बाद दूसरा शिखर उभरा हुआ दिखाई दिया। इस बार उड़ाकुओं ने

पहिचानने में भूल न की और सबसे ऊंचे, सबसे सफ़ेद और सबसे भयानक शिखर को कैमरे का लक्ष्य बना दिया। उसका सारा सौन्दर्य, सारी भयानकता और सारी ऊंचाई सिमिट कर एक कैमरे में बन्द होगई। जिस शिखर की ओर देखते हुए बड़े-बड़े वीरों के दिल दहल जाते थे अब उसी एवरेस्ट को सारी दुनिया नाटकशाला के पर्दे पर कौतूहल से देखेगी।

कार्यं वा साधेयं, देहं वा पातेयम्

अर्थात्

करना या मरना

सन् १६३३ की बात है। एक सनकी युवक लन्दन हवाई क्लब के आफ़िस में आया। युवक की आयु लगभग ३४ वर्ष की थी और वह यार्कशायर का रहने वाला था। अपना परिचय देते हुए युवक ने बड़े धैर्य से कहा—

"मेरा नाम मौरिस विलसन है। मैं आपसे यह प्रार्थना करने आया हूं कि मुझे अकेले ही एवरेस्ट पर उड़ान करने की अनुमति दीजिए।"

अधिकारी भली प्रकार जानते थे कि एवरेस्ट पर पिछली उड़ान में योग्यतम और अनुभवी उड़ाकू भेजे गये थे और उनकी सुख-सुविधा का सब सामान साथ था। फिर भी उन्हें ऊंचाई पर जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, उन्हें देखते हुए निकट-भविष्य में कोई भी हवाबाज़ एवरेस्ट पर उड़ने का साहस नहीं कर सकेगा। ऐसी अवस्था में एक अधकच्चरे युवक के मुँह से उपरोक्त वचन सुनकर अधिकारियों को हँसी आये बिना न रही।

उन्होंने एक बार युवक को सिर से पांव तक देखा और पूछा—"कुछ हिमालय का अनुभव भी है तुम्हें ?"

मौरिस विलसन—जी नहीं।

अधिकारी—पर्वतारोहण का ?

विलसन—जी नहीं।

अधिकारी—उड़ान का ?

विलसन—दो मास पहले ही मैंने अकेली उड़ान का टैस्ट दिया है और उसका सर्टिफिकेट मेरे पास है।

अधिकारी—सर्टिफिकेट ने तो हवा में नहीं उड़ना युवक! उड़ना तो तुमने है। जिसे एवरेस्ट का क ख ग घ ही नहीं आता भला वह उसकी चोटी तक उड़ान कैसे कर सकेगा ? युवक! एवरेस्ट पर उड़ान करना खेल नहीं! तुम उसे जितना सरल समझे बैठे हो वह उतनी ही टेढ़ी खीर है। क्या तुमने हिमालय पर पिछले हवाबाजों की उड़ान का वृत्तांत पढ़ा है ?

विलसन—जी हां, इसके अतिरिक्त मैंने एवरेस्ट-विषयक साहित्य का भी गहरा अध्ययन किया है।

अधिकारी—पुस्तक में पढ़ लेने और हाथ-पांव से काम करने में ज़मीन-आस्मान का अन्तर होता है। आखिर तुम्हारी योजना क्या है ? तुम्हारे दल में कोई और व्यक्ति है ?

विलसन—कोई नहीं।

अधिकारी—पर्याप्त धन है ?

विलसन—जी नहीं। मेरे निजी खाते में जो थोड़े-बहुत रुपये

हैं, मेरे लिये वही पर्याप्त होंगे।

अधिकारी—युवक! इस अवस्था में तुम्हें अनुमति नहीं मिल सकती। जाओ पहले किसी दल का समर्थन प्राप्त करो।

विलसन– श्रीमन्! मेरा विचार अवश्यमेव चोटी तक उड़ान करने का नहीं है, अपितु जितनी ऊंचाई तक सरलता से वायुयान द्वारा जा सकूं, वहां तक वायुयान द्वारा जाने का है।

अधिकारी—और उससे आगे?

विलसन—उससे आगे पैदल।

अधिकारी—जाओ युवक! मैं तुम्हें यही सलाह देता हूँ कि कहीं ऐसा पागलपन करके अपने अंजर-पंजर ढीले न करवा बैठना। अपनी जवानी पर तरस खाओ और इस दुःसाहस से बाज आ जाओ।

इसके बाद अखबारों में उसके कार्टून छपे। लोगों ने उसे पागल कहा, जैसे कि साहस के काम करने वाले प्रत्येक साहसी युवक को आरम्भ में लोग पागल, मूर्ख और शेखचिल्ली कहा करते हैं। लेकिन विलसन संसार में शोहरत पाने न आया था, वह तो कुछ कर दिखलाने के लिए पैदा हुआ था। उसने दुनिया की बातों पर तनिक भी ध्यान न दिया। अपनी समूची पूँजी लगाकर उसने एक पुराना हवाई-जहाज मोल लिया और जैसे-तैसे कराची पहुँच गया। अपनी योजना के अनुसार वह नेपाल की ओर से एवरेस्ट पर उड़ान करना चाहता था, किन्तु नेपाल के अधिकारियों ने उसे सीमा लांघने की आज्ञा न दी, क्योंकि उन दिनों हर एक

फ़िरंगी को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था।

विलसन ने सोचा, हो सकता है कि मेरी अँग्रेज़ियत ही मेरी पकी-पकाई योजना को ले डूबे, इसलिए पहले इसी झगड़े को समाप्त करना चाहिये। यह सोचकर विलसन ने कोट-पैंट और हैट उतारे और उनकी जगह कुर्ता-धोती और पगड़ी पहन ली—बस हिन्दुस्तानी वेश बन गया। रही-सही कसर उसने दाढ़ी बढ़ा कर और सिर पर जटाएँ रखकर पूरी कर लीं। अब वह पक्का हिन्दुस्तानी दीखने लगा।

बाबाजी बनते ही उसे एक नई वस्तु हाथ लग गई। साधुओं के साथ मेल-जोल होने से उसे पता चला कि योगाभ्यास और प्राणायाम ऐसी विधियाँ हैं कि उनका अभ्यास करने से सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, दु:ख, बीमारी इन सभी इन्सानी कमज़ोरियों पर मनुष्य काबू पा लेता है और उसकी आत्मिक-शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि किसी भी ऊँचाई और किसी भी गहराई में वह उतनी ही सरलता से रह सकता, घूम सकता और चल-फिर सकता है, जितनी सरलता से कि धरती के मैदानों में। बस, विलसन को मानो सफलता का गुर हाथ लग गया। वह जानता था कि एवरेस्ट की ऊँचाई, पतली हवा और सर्दी आदि से बचने के लिए ही बड़े-बड़े दल इकट्ठे किए जाते हैं, पड़ाव डालने की योजनाएँ बनाई जाती हैं, आक्सीजन के भारी-भारी यन्त्र बटोरे जाते हैं, और न जाने क्या-क्या तैयारियाँ करनी पड़ती हैं। उसके पास इतनी साज-सज्जा के लिए धन न था, फिर भी एवरेस्ट पर चढ़ना अवश्य था। धन और सामान की कमी

उसने प्राणायाम के अभ्यास द्वारा पूरी करने का निश्चय किया। उसने यह भी सुना कि कई योगी हिमालय की कन्दराओं में बरसों से योगासन लगाये बैठे हैं। ऐसे महा-पुरुषों के दर्शनों की लालसा भी विलसन के हृदय में जागे बिना न रही। उसने अपना जहाज़ बेच दिया और जंगलों में रहकर साधुओं और योगियों से योगाभ्यास सीखने लगा।

इसे कहते हैं लगन! जिसे किसी बात की लगन लग जाती है, उसे पूरा करने के लिए वह इस बात की परवाह नहीं करता कि उसके पास अनेकों साधन हैं या नहीं। वह तो आगे बढ़ता जाता है, उसका रास्ता भगवान् खोल देते हैं।

पूरे एक वर्ष तक वह अभ्यास करता रहा। उसने प्राणायाम के जो लाभ सुने थे, अभ्यास करते हुए उसने उसे कहीं अधिक चमत्कारपूर्ण पाया। कहना न होगा कि जिस सिद्धि को प्राप्त करने में साधारण लोगों को बरसों लग जाते हैं, वह विलसन ने कुछ महीनों में ही प्राप्त करली। एक वर्ष के बाद उसे अनुभव होने लगा कि वह प्राणायाम की सहायता से ऊँचाई पर होने वाली उन सब कठिनाइयों पर काबू पा सकता है, जिनके लिए साधारण पर्वतारोहियों को हज़ारों प्रपंच रचने पड़ते हैं। इसी दौरान में विलसन ने उन शेरपाओं से मेल-जोल बढ़ा लिया, जिन्हें एवरेस्ट पर चढ़ने का अनुभव था।

अप्रैल १६३४ में दो कुलियों और एक शेरपा पथ-प्रदर्शक को साथ लेकर वह पैदल ही तिब्बत की ओर रवाना हो गया। भेदिये

उसकी खोज में थे। पुलिस की पैनी आँखें उसका पीछा कर रही थीं। इसलिए वह जंगलों में लुकते-छिपते झाड़ियों में पनाह लेते हुए एवरेस्ट की ओर अग्रसर होने लगा।

१६ अप्रैल सन् १६३४ को वह लामाओं के अन्तिम बिहार में पहुँचा। वहाँ लामाओं से योग के विषय पर बातचीत करने के लिए कुछ दिनों के लिए रुक गया। लामाओं ने बीसियों गोरे आदमी देखे थे और उनसे बातचीत की थी, किन्तु किसी में यह अलौकिक तेज देखने में नहीं आया था, जो इस युवा संन्यासी के चेहरे पर चमकता हुआ दिखाई देता था। स्वयं बौद्ध-भिक्षु लामा उससे प्रभावित हुए बिना न रहे। कहाँ वे अँग्रेज जो अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर चमक-दमक के साथ हिमालय से लोहा लेने के लिए आगे बढ़ते थे और कहाँ यह सौम्य युवक जो खाली हाथ केवल अपने साहस का सहारा लिए एवरेस्ट पर चढ़ने जा रहा था। उसकी हरकतों में अन्य पर्वतारोहियों के घमंड की बू तक न आती थी। ऐसा लगता था मानो वह किसी पुण्य तीर्थ की यात्रा करने जा रहा हो। लामा ने मन ही मन युवक की सफलता की कामना की।

१७ अप्रैल को विलसन ने अपने दो कुलियों के साथ रौंगबुक ग्लेशियर पर खेमा गाड़ दिया। अगले ही दिन वह दूसरे पड़ाव पर जा पहुँचा, जिसे १६२२ और १६२४ के आरोहियों ने स्थापित किया था। अब उसके आगे ८००० फुट की चढ़ाई थी। तीसरा पड़ाव ६०० फुट की चढ़ाई पर ही था, किन्तु वहाँ तक पहुँचने के लिए छः मील का घुमावदार रास्ता तै करना पड़ता था। वह केवल

रोटी, चाय और हलुआ खा कर एवरेस्ट-विजय के स्वप्न देख रहा था। छः दिन की कठिन चढ़ाई चढ़ने के बाद भी वह तीसरे पड़ाव तक न पहुँच सका और बीमार पड़ गया।

विलसन १२ मई को पुनः स्वस्थ हो गया। उसके कुलियों ने तीसरे पड़ाव तक चलने का वायदा किया था किन्तु तीन दिन की चढ़ाई के बाद ही वे थक गये। थकते भी क्यों न ! वे लोग हिले हुए थे शाही ठाठ-बाट के साथ ऊपर चढ़ने में। पड़ाव-पड़ाव पर पौष्टिक भोजनों और मुरब्बों के डिब्बे तैयार मिलते थे। तंबुओं की कमी न होती थी। हर रोज़ डाक्टर नलियां लगाकर स्वास्थ्य की परीक्षा करता था। तनिक-सी थकान आते ही या सर्दी का असर होते ही ब्रांडी और दवाइयों की शीशियां खुलने लगती थीं। और, इस पर्वतारोही के साथ चलने में उन्हें मन की सांत्वना और शांति के सिवाय और कुछ न मिलता था। वे कब का उसका साथ छोड़ चुके होते किन्तु न जाने विलसन में उन्हें कौन-सा जादू दिखाई दिया कि वे चाहते हुए भी उसे छोड़ न सके। तीसरे पड़ाव के रास्ते में भयंकर तूफ़ान ने एक सप्ताह तक उन्हें रोके रखा। छः दिन की चढ़ाई के बाद वे २०,००० फ़ुट की ऊंचाई पर पहुँच ही गये। यही तीसरा पड़ाव था। यहाँ से आगे बढ़ने में उन्हें अपने प्राणों पर संकट आता दिखाई देने लगा और साथ ही अपने अगुआ के प्राणों पर भी। जान किसे प्यारी नहीं होती ? फिर यहाँ तो मौत निश्चित थी, क्योंकि इतनी ऊंचाई पर अन्य पर्वतारोही पद-पद पर कुल्हाड़ों, रस्सियों, कैंपों

और नक्शों की मदद लेकर आगे बढ़ते हैं। किन्तु यहाँ तो राम ही राम था। कुलियों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। विलसन ने एक बार भी मजबूर नहीं किया और अकेला ही आगे बढ़ने के लिये तैयार हो गया। कुलियों ने ऐसा विचित्र आदमी कभी न देखा था। वे आंखें फाड़-फाड़कर उसे देखते ही रह गये और विलसन ने अपना पांव आगे बढ़ा दिया।

कुलियों ने पुकार कर कहा—"आप नहीं जा सकेंगे साहब! इससे आगे मौत का अड्डा है। बहुत हो चुका! आपने वह काम कर दिखाया जो आज तक कोई आदमी न कर सका। आप आगे की सर्दी को नहीं जानते। पलक झपकाते ही इन्सान अकड़ जाता है, आंखें चुंधिया जाती हैं, दिमाग़ की रगें ढीली पड़ जाती हैं और हाथ-पांव ठिठुर कर बर्फ़ बन जाते हैं। ऊपर की बर्फ़ीली हवा छुरे की धार से भी तेज़ है और अंग-अंग को छलनी कर देती है। कृपया लौट आइये। अपने प्राणों को संकट में मत डालिये। आप जैसे साहसी युवक के लिये दुनियां में और कई काम हैं। बर्फ़ में गल-गलकर मरने से क्या लाभ ?

यह सब कुछ उससे भूला न था। वे सर्दियां, वे आंधियां, वे तूफान, उन सबको वह खूब जानता था, किन्तु वह एक चीज़ न जानता था जिसका नाम है 'भय, डर, खतरा।' उसके दिल, दिमाग़ और फेफड़ों को सर्दी का कोई भी भय न था क्योंकि वह प्राणायाम जानता था। उसका शरीर उसके मन का ग़ुलाम था और तूफानों में भी देख सकता था, बर्फ़ में भी आगे बढ़ सकता

था और चोटियों पर चढ़ सकता था। फिर, आधे रास्ते तक आकर वापस लौट आए यह कहाँ की दानाई थी।

उसने पीठ पर एक तंबू लादा, बगल में तीन चपातियां दबाईं, सत्तू की पोटली बांधी और कंधे पर कैमरा लटका कर चल पड़ा। उसने एक बार पीछे घूम कर देखा और कुलियों से केवल इतना कहा—

"पन्द्रह दिन तक मेरी प्रतीक्षा करना। मैं लौट कर आऊंगा और अवश्य आऊंगा। यह मेरा टट्टू और बाकी सामान सब तुम्हारा हुआ किन्तु मेरी प्रतीक्षा करना, भूल न जाना। मैं लौटकर मिलूंगा।"

कुली चुप हो रहे। टकटकी लगाकर उसे आगे ही आगे बढ़ते हुए देखने के सिवाय वे और कर ही क्या सकते थे? धीरे-धीरे विलसन की छाया छोटी, फिर और छोटी और फिर बिन्दु के समान छोटी होती हुई अन्त में कुलियों की आंखों से ओझल हो गई।

विलसन ने उन्हें पन्द्रह दिन तक प्रतीक्षा करने के लिये कहा था। उन्होंने एक मास तक प्रतीक्षा की। जिस साहस और जिस बहादुरी के साथ विलसन बर्फ में पांव बढ़ाता हुआ आगे बढ़ा था उसे देखकर कुलियों का दिल गवाही-सी देने लगा था कि वह युवक निराशा से भी आशा को छीन लाएगा—उस दुर्गम स्थान पर भी पहुँच जाएगा और अजेय एवरेस्ट को भी जीत लेगा—और लौटकर आएगा—अवश्य आएगा। वह कह गया है "पन्द्रह दिन

तक मेरी प्रतीक्षा करना"; हो सकता है उसे अधिक समय लग जाए किन्तु वह आएगा अवश्य। हम उसकी प्रतीक्षा करेंगे ।

किन्तु—किन्तु—वह लौट कर न आया। १६३५ में जब पांचवां दल एवरेस्ट पर चढ़ने के लिये गया तो रौंगबुक ग्लेशियर में २१,००० फुट की ऊंचाई पर उन्हें विलसन का शव पड़ा हुआ मिला। साथ ही मिली उसकी डायरी जिसके अंतिम पन्ने पर लिखा था—

"३१ मई १६३४—

धूप खिली हुई है और मैं फिर आगे बढ़ रहा हूँ।"

चौथा अभियान

(१९३३)

भारत के अलमोड़ा जिले में एक अँग्रेज डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर थे। उनका नाम था मिस्टर ह्यू रटलेज। एक ऊँचे अधिकारी होते हुए भी उन्हें पहाड़ों पर चढ़ने का बड़ा चाव था। हिमालय के पहाड़ों पर तो वे जान देते थे। जहाँ तक सम्भव हो सकता था वे हिमालय के पास वाले इलाक़ों में अपनी तब्दीली करवा लेते। यदि उन्हें दूर देश में भी रहना पड़ता तो छुट्टियों का शायद ही कोई ऐसा अवसर आता हो जब वे अपने प्रिय हिमालय की छाया में जाकर कुछ दिन न बिताते हों। हिमालय के विषय में उनकी इतनी जानकारी बढ़ गई थी कि वहाँ के रीति-रिवाज, वहाँ की भाषा और वहाँ के लोगों को वे भली-भाँति जानने लगे थे। वे सरकारी नौकरी से रिटायर हुए तो भी हिमालय का प्रेम उनके हृदय में पहले जैसा ही बना रहा।

इन्हीं दिनों एवरेस्ट पर चढ़ने के कई यत्न किये जा रहे थे। मिस्टर रटलेज ने भी एक बार अपना भाग्य आज़मा लेना चाहा।

किन्तु कठिनाई यह थी कि उनकी आयु ४५ वर्ष से ऊपर हो चुकी थी और एवरेस्ट के शिखर पर चढ़ने के लिये २८ से ३० वर्ष तक की आयु के युवक ही सबसे अच्छे माने जाते हैं। रटलेज ने सोचा तीसरे पड़ाव अर्थात् २३००० फुट की ऊँचाई तक तो मैं चढ़ ही सकूँगा। उससे ऊपर मैं न चढ़ सका तो न सही। मैं अपने साथी अन्य पर्वतारोहियों को अपनी सलाह और सहायता तो देता रहूँगा। यही सोचकर उन्होंने १६३३ में एक दल तैयार किया।

कहते हैं कि बढ़िया सामान और योग्य पर्वतारोहियों का जैसा चुनाव रटलेज ने किया वैसा आज तक किसी ने भी न किया होगा। उन्होंने साधारण कपड़ों की जगह "ग्रेनफैल क्लाथ" की पोशाकें और तम्बू बनाये जो कि विंडप्रूफ थे अर्थात् उन पर आँधी का विशेष प्रभाव न पड़ सकता था। तीसरे और चौथे पड़ाव के लिये उन्होंने जो तम्बू बनवाये वे दोहरे चमड़े के बने हुए थे। बर्फीले बूट और सोने के लिये थैले भी विशेष रूप से तैयार करवाये गये थे। मतलब यह कि तैयारी में कोई कसर न उठा रखी गई थी।

साथियों के रूप में उन्होंने उस समय के सबसे योग्य एवं प्रसिद्ध १२ पर्वतारोहियों को चुना, जिनमें स्मिथ, शिप्टन, हैरिस आदि मुख्य थे। वे संसार के अन्य कई पर्वत-शिखरों पर चढ़कर नाम कमा चुके थे।

ये लोग अप्रैल के पहले सप्ताह में दार्जिलिंग से चले। इनके साथ तीन सौ भारवाही पशु, उन पर बेशुमार सामान और साथ में शेरपा, नैपाली और भूटानी कुलियों की एक पूरी सेना थी।

उन्होंने जल्दबाज़ी से बिल्कुल काम न लिया और बड़े आराम से चलते हुए एक महीने बाद शेकारजांग पहुँचे जहाँ एक मन्दिर और महात्मा बुद्ध की एक विशाल मूर्ति है। नार्थपोल पहुँचने तक मौसम ने तनिक भी इनसे छेड़छाड़ न की और वे बड़े धैर्य से ऊपर चढ़ते गये। ज्यों ही वे तीसरे पड़ाव से आगे बढ़ने लगे त्यों ही एवरेस्ट ने अपने तोपखाने के मुँह खोल दिये और धुँआधार बर्फ़ गिरने लगी। आँधी के झोंकों ने बर्फ़बारी को बमबारी के रूप में बदल दिया था। इन लोगों ने क़ैदियों की तरह कई दिन तम्बुओं में ही बिता दिये। आखिर एक दिन उजला भी आया। सूर्य की पहली किरण के साथ वे लोग भी आगे चले। चलते-चलते वे उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ १६२२ में बर्फ़ में दबकर ११ कुली मर गये थे। वहाँ अब भी एक लम्बी-चौड़ी दरार फटी पड़ी थी। उन्होंने कहीं रस्से बांधे, कहीं रेंगे और कहीं बर्फ़ की पुलियों को पार किया और अन्त में एक ऐसी बर्फ़ की दीवार के पास जा पहुँचे जो लगभग ३० फुट ऊँची थी—मामूली नहीं, बिल्कुल दीवार की तरह सीधी। अगुआ एक हाथ से दीवार को पकड़ता और दूसरे हाथ से कुल्हाड़े की चोट लगा कर बर्फ़ में पाँव रखने की जगह बनाता। इस प्रकार एक के बाद दूसरा पर्वतारोही उस दीवार पर चढ़ते हुए ऐसे दिखाई देते थे मानो चोरों का गिरोह सेंध लगाकर शीश-महल पर चढ़ रहा हो। सर्दी के मारे उनकी अँगुलियाँ सुन्न हो गईं और हृदय में धड़कन की जगह तबले बजने लगे। कुल्हाड़ा मारते कहीं थे, लगता कहीं था। इस प्रकार काटते-छीलते हुए वे नार्थपोल

की चोटी पर पहुँच गये। यही नार्थपोल एवरेस्ट की राह में सबसे बड़ी अड़चन है। वह छोटे एवरेस्ट से किसी प्रकार कम नहीं। इसे पार कर लेने के पश्चात् इन्होंने चौथा और पाँचवाँ पड़ाव भी शीघ्र ही स्थापित कर लिया। पाँचवें पड़ाव को तो उन्होंने साज-सामान से इतनी अच्छी तरह भर दिया कि वहाँ से ऊपर सहायता भेजने में तनिक भी कठिनाई न हो।

पांचवें कैंप से वे पहली बार आगे बढ़े तो तूफ़ान ने इन्हें पीछे धकेल दिया। धकेलते-धकेलते वह इन्हें चौथे पड़ाव तक ले आया। यहां भी उसने इनका पीछा न छोड़ा। नार्थकोल की चोटी से बर्फ टूट-टूट कर गिरने लगी। एक भी बर्फ का बड़ा टुकड़ा गिरा नहीं कि ये सब उसमें दबे नहीं। झटपट इन्होंने तम्बू उखाड़े और उन्हें अलग से एक सुरक्षित स्थान पर गाड़ दिया। मौसम के विरुद्ध ये सब पैंतरे रटलेज की योजना के अनुसार बदले जा रहे थे जो तीसरे पड़ाव पर बैठा टेलीफोन द्वारा उन्हें आदेश देता जा रहा था। २५००० फुट की ऊँचाई तक फोन ने खूब काम किया किन्तु इसके आगे तार कट गई और सन्देश कुलियों के द्वारा ही भेजने पड़े।

खैर, दूसरी बार वे अच्छी किस्मत साथ लेकर पांचवें पड़ाव की ओर बढ़े और कठिन मार्ग के बावजूद उन्होंने २७४०० फुट पर छठा पड़ाव बना ही लिया।

वे अप्रैल के आरम्भ में दार्जिलिंग से चले थे। अब ३० मई हो चली थी। छठे पड़ाव से हैरिस और वैगर सातवां पड़ाव बनाने

के लिये चले। हैरिस ने जल्दबाजी में आकर छोटा रास्ता अपनाना चाहा। इसका परिणाम यह हुआ कि उसने पहुँचना कहीं और था, और पहुँच गया किसी दूसरी जगह। वह हाथों के बल ऊपर चढ़ने का यत्न कर रहा था कि पांवों तले की बर्फ सरक गई। बर्फ के साथ ही हैरिस भी फिसल चला। यदि वह ढलान की ओर जाता तो भी उसके बच निकलने की कोई आशा थी किन्तु वह तो एक ऊँची दीवार की ओर लुढ़का जा रहा था जहां से गिरने पर मृत्यु निश्चित थी। लुढ़कते-लुढ़कते वह दीवार के अन्तिम छोः तक पहुँच गया और नीचे गिरा ही चाहता था कि उसे एक बात सूझ गई। उसने कुल्हाड़े को उल्टी ओर से पकड़ कर उसके दस्ते को बर्फ में धंसा दिया और अपना सारा भार कुल्हाड़े पर डाल दिया। इस तरह वह तो बच गया किन्तु उसकी पीठ और घुटनों पर खुरचनें पड़ गईं। फुर्ती से काम लेकर उसने अपनी विशेष निपुणता का परिचय दिया। पर्वतारोहियों का यह नियम है कि वे आखिर दम तक धैर्य नहीं छोड़ते। मृत्यु का भय तो कदम-कदम पर होता है। यदि मृत्यु मुँह बाये उनके सामने खड़ी भी हो और उनके पांव मृत्यु के मुँह में पहुँच भी चुके हों तो भी हाथों से वे जीवन और आशा को पकड़े रहते हैं। इतने जोखिम का काम करके हैरिस के लिये और आगे जाना असम्भव था। वह और वैगर वापस लौट आये।

अगले दिन स्मिथ और शिप्टन छठे पड़ाव से चले। पहले दिन जहां हैरिस ने भूल की थी वहीं शिप्टन का साहस भी छूट

गया। वह घबराकर नीचे लौट आया तो स्मिथ अकेला ही आगे बढ़ा। आगे स्मिथ ने क्या किया और क्या देखा इसका वर्णन उसी के मुँह से सुनिये :—

"शिप्टन लौट गया और मैं अकेला रह गया। किंतु मुझे ऐसा लगा जैसे मैं अकेला नहीं, मेरे साथ कोई और भी आ रहा है। कई बार मुझे हवा में चिड़िया की तरह पंख फड़फड़ाने की आहट भी सुनाई दी। किन्तु इन आंखों से मुझे कुछ दिखाई न दिया। यह हाड़-मांस का पुतला नहीं अपितु कोई अदृश्य व्यक्ति था। भूत, प्रेत, डर, खौफ, इस प्रकार का कोई भाव मेरे मन में आया हो— कतई नहीं। उलटा, उसकी मौजूदगी से मुझे उसका सहारा था, उस पर विश्वास था और मन में धैर्य। बीच-बीच में मुझे ऐसा अनुभव होता था कि रस्से का एक सिरा मेरी कमर से बंधा हुआ है और दूसरा उस अदृश्य व्यक्ति की कमर से; और यदि मैं गिरने लगा तो वह व्यक्ति मुझे बचा लेगा। मुझे उसके होने का इतना निश्चय था कि दो-चार बार मैंने पीछे घूम कर भी देखा। एक बार तो जब मैं केक खाने के लिये तनिक रुका तो अनजाने ही मैंने एक टुकड़ा उसकी ओर बढ़ा दिया। तब मैंने अनुभव किया कि लेने वाला तो कोई है ही नहीं। वस्तुतः वह था और मेरा सहायक बनकर मेरे साथ-साथ चल रहा था। गुपचुप आवाज में उस व्यक्ति ने मेरे कानों में कहा—

'बढ़े चलो! मैं तुम्हारे साथ हूँ। मुझ पर विश्वास करो। मेरे रहते तुम्हें कोई डर नहीं। मैं तुम्हें सफलता की सीढ़ी तक

ले चलूँगा।' इस प्रकार २८१०० फुट तक वह व्यक्ति मेरे साथ-साथ गया।

"बिना थके, बिना डरे, बिना रुके मैं ऊपर चढ़ता गया। शिखर बिल्कुल पास रह गया था। मेरा साथी मेरे दिलमें बैठकर कह रहा था "शाबाश स्मिथ! कदम आगे बढ़ा, तू मंजिल तक पहुँच जाएगा।" सचमुच मैं चोटी तक पहुँच चला। ऊँचाई का मुझ पर तनिक भी प्रभाव न था, सांस मेरी बिलकुल न फूली थी और दिल मेरा बिलकुल न धड़क रहा था। शायद मैं ऊपर चढ़ ही जाता किन्तु आंधी का एक झोंका आया और मैं कुछ कदम आगे बढ़ने के बदले पीछे लौट चला। शायद यह परीक्षा का समय था। मेरे सहायक ने तो मुझे अन्त तक आगे बढ़ाया किन्तु मैं ही आगे न बढ़ा। मैं फेल हो गया।

"जब तक मैं नीचे उतरता हुआ छठे पड़ाव तक सुरक्षित न पहुँच गया तब तक वह अदृश्य व्यक्ति मेरे साथ रहा। ज्यों ही मैं अपने साथियों में पहुँचा त्यों ही वह व्यक्ति मुझ से छूट गया। मुझे ऐसा लगा कि मानो मेरा कोई हितैषी बन्धु बिछुड़ गया हो।

"यह आंखों का भ्रम हो, मेरे दिल की कमजोरी हो, थकान का प्रभाव हो या अधिक ऊँचाई का मेरे मस्तिष्क पर असर हो, इस बात को मानने के लिये मैं बिल्कुल तैयार नहीं। क्योंकि मैंने कई बार जानी-पहचानी हुई चोटियों की ओर दृष्टि घुमाकर देखा। वे मुझे ठीक वैसी ही दिखाई दीं जैसी कि मैं उन्हें नीचे देख चुका था। मैंने अपने हाथों, पांवों और शरीर की ओर देखा। सब कुछ

मुझे वैसा का वैसा दिखाई देता था। मेरा दिमाग़ बिलकुल ठीक काम कर रहा था। फिर भी मैंने उस अदृश्य व्यक्ति की उपस्थिति का अनुभव किया। इस बात का विश्वास मैं दुनिया को यही कह कर दिला सकता हूँ कि मैंने उसका अनुभव किया और अवश्य किया। दीखने वाली शक्तियों के अतिरिक्त कोई ऐसी शक्ति भी है जिसे हम आँखों से तो नहीं देख सकते किन्तु मन में उसका अद्भुत प्रभाव अनुभव कर सकते हैं। जब हम पर कठिनाई आती है, विपत्तियाँ टूटती हैं तो वह शक्ति प्रकट होकर हमें सहारा देती है। जब विपत्तियाँ टल जाती हैं तो हमारे मन पर पर्दा पड़ जाता है और हम 'उसे' भूल जाते हैं, और हम कहने लगते 'मैं', मेरा और मुझे।"

पांचवां अभियान

(१९३५)

"शेते करी मश्क-पाद-विपादिकायाम् ।"

अर्थात्—"मच्छर के पांव की फूट (बिवाई) में हाथी टाँग पसार कर सोता है ।"

सन् १९३५ की बसन्त ऋतु आई । इधर फूलों पर रंग-बिरंगी तितलियां मंडराने लगीं, उधर दार्जिलिंग में सात समुन्दर पार विलायत से चलकर फ़िरंगियों का एक दल चक्कर काटने लगा । शेरपाओं के लिए यह विशेष उत्सव का समय था क्योंकि फ़िरंगियों का इतनी सर्दी रहते दार्जिलिंग में जाने का अभिप्राय ही होता था—एवरेस्ट पर चढ़ाई करना । बार-बार की चढ़ाई से शेरपाओं में भी एवरेस्ट के लिए आकर्षण पैदा हो गया था, कुछ मजदूरी मिल जाने की आशा से, और कुछ बहादुरी का काम कर दिखाने के विचार से । कई शेरपाओं का तो शग़ल ही बन गया था एवरेस्ट पर चढ़ना । इस बार भी फ़िरंगियों को आये देख-कर शेरपा लोग दूर-दूर से चलकर उनके पास आने लगे । अंग्रेजी दल के नेता थे मिस्टर शिप्टन । उन्होंने शेरपाओं को कहा—

"इस बार हम बहुत कुली साथ नहीं ले जाएंगे। केवल पन्द्रह चाहिएँ। तुममें से जो लोग आखिर तक हमारा साथ देने का साहस रखते हों वे आगे आजाएं।"

बहुत से कुली जाने को तैयार हो गये किन्तु शिप्टन ने उनमें से केवल १५ चुन लिए—हृष्ट-पुष्ट और गठीले शेरपा। इनमें एक तेनसिंह भी था, यह पहली बार ही एवरेस्ट की चढ़ाई में साथ जा रहा था। वह पहले हिमालय की कई अन्य चोटियों पर चढ़ने के लिये दलों के साथ जाना चाहता था किन्तु उसके घर वाले उसे न जाने देते थे। इस बार वह भागकर आगया था। कुलियों के नेता आंगथारके ने 'साहब' से तेनसिंह की विशेष सिफारिश की थी। इस प्रकार बड़े-बड़े नामी पर्वतारोहियों में एक गुमनाम बहादुर भी चला—शेरपा तेनसिंह, एक साधारण कुली के रूप में।

मई के मध्य में इनका दल दार्जिलिंग से चल पड़ा। यह बहुत ही हलका-फुलका और छोटा-सा दल था। न अधिक सामान था, न बहुत से घोड़े टट्टू, याक आदि और न ही अधिक पर्वतारोही। नेता को मिलाकर कुल ६ आरोही थे जिनके नाम ये हैं :—

(१) मिस्टर शिप्टन।
(२) टिलमैन
(३) डा० वारेन
(४) कम्पसन
(५) विगरैम
(६) ब्रायएट
(७) स्पैण्डर

पिछले वर्षों के दल बारह-बारह हजार पौंड की रकम एक-एक यात्रा के लिए खर्च करते रहे थे, किन्तु इस दल ने केवल चौदह सौ पौंड व्यय करने का ही लक्ष्य बनाया। पहले दलों के अनुभव से उन्होंने यह सार निकाला कि जितना अधिक साज-सामान हो उतनी ही अधिक उसे संभालने और ऊपर ले जाने में कठिनाई होती है। इसकी अपेक्षा यदि दल छोटा किन्तु साहसी और फुर्तीला हो तो एवरेस्ट पर चढ़ जाने की अधिक आशा हो सकती है। रौंगबुक ग्लेशियर पर पहुँचने तक इस दल को एक भी तम्बू न लगाना पड़ा। पहाड़ी शेरपा इस दल को अपने घरों में ही ठहराते गये। छोटे दल का यह सबसे बड़ा आराम था।

रौंगबुक में दल रुका नहीं। जो दो चार क्षण वे बिहार में रुके वे उन्होंने लामा के साथ बातचीत करने में बिता दिये। बात का विषय था—विलसन। लामा ने उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की और आशीर्वाद दिया कि इस दल में भी वही साहस काम करे।

रौंगबुक से आगे यह दल पुराना रास्ता छोड़कर नये रास्ते से आगे बढ़ने लगा। "शायद कोई सरल रास्ता मिल जाये" इस आशा से दल ने दक्षिणी राह अपनाई। बीच-बीच में उन्हें एवरेस्ट की चमकती हुई चोटी दिखाई देती रही। दल ने पहला पड़ाव रौंगबुक ग्लेशियर के पूर्वी किनारे पर लगाया। यहां से बिना किसी कठिनाई का सामना किये दल दूसरे और तीसरे पड़ाव पर जा पहुँचा।

एक दिन शिप्टन तीसरे पड़ाव से तीन चार सौ गज हटकर

चल रहा था कि ग्लेशियर पर उसे विलसन का शव पड़ा हुआ मिला। उसके रंग-ढंग को देखकर पता चलता था कि वह सोते हुए ही सदा की नींद सो गया। जिस तम्बू में वह सोया था उसकी धज्जियां तक उड़ चुकी थीं। हां तम्बू की रस्सियां तब भी कीलों के साथ तनी हुई थीं। शिप्टन ने विलसन की डायरी सम्भाल ली और उस वीरात्मा को वहीं एक कब्र में दफ़ना दिया और उस पर एक समाधि बनवा दी जिस पर ये अक्षर खुदे हुए आज भी पर्वतारोहियों को विलसन की याद दिलाते हैं—

"इस स्थान पर वीरात्मा विलसन सो रहा है। वह अकेला
ही एवरेस्ट की चढ़ाई चढ़ते हुए १६३४ में
वीरगति को प्राप्त हुआ।"

विलसन की समाधि पर श्रद्धांजलि अर्पित करके ये लोग किसी सरल मार्ग की खोज में नार्थकोल पर तीन दिन तक भटकते रहे। चौथे दिन अर्थात् १५ जुलाई को शिप्टन को नार्थकोल के ऊपर एक सरल स्थान दिखाई दिया। वहीं से नार्थकोल को पार करने की योजना बनाकर उसने तीसरा पड़ाव डाल दिया। अब तक मार्ग सरल था तो आकाश भी निर्मल रहा। जब चढ़ाई कठिन आई तो आकाश में भी घटाएं घिर आईं। हिमालय ने अपना वही रुद्र-रूप दिखाना आरंभ किया जो वह आजतक पर्वतारोहियों को दिखाता आया था—बर्फ़, आंधियां, तूफ़ान और बिजलियां। मौसम विकट से विकटतर हो चला। आकाश के निर्मल होने की आशा में यात्री एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन

तक रुके रहे, किन्तु बर्फ ने रुकने का नाम भी न लिया। विवश होकर वे लोग तीसरे पड़ाव पर उतर चले।

२०,००० फुट की ऊँचाई पर उतरते-उतरते एक जगह शिप्टन सहसा ठिठक कर खड़ा हो गया और आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। वारेन ने पूछा—

"क्यों, क्या है शिप्टन ?"

शिप्टन मुँह से कुछ न बोला। उसने केवल सामने दूर तक बिछी हुई बर्फ की ओर अपना हाथ बढ़ा दिया। वारेन ने देखा कि कई सौ गज दाईं ओर कई सौ गज बाईं ओर दूर तक पांवों के निशान चले गये हैं। उसने चकित होकर कहा—

"दीखता है हमारे अतिरिक्त कोई और यात्री भी एवरेस्ट पर चढ़ने का यत्न कर रहा है।"

शिप्टन ने कहा—वारेन! तनिक ध्यान से देखो। ये पद्-चिन्ह किसी मनुष्य के दिखाई नहीं देते। यह देखो पांवों की अंगुलियों के निशान और एड़ी का चिन्ह बर्फ में साफ़ दिखाई दे रहा है। निश्चय ही नंगे पांव चलने वाला यह कोई यात्री नहीं हो सकता। फिर जरा पाँव की चौड़ाई को भी तो देखो। इतना बड़ा पाँव किसी आदमी का हो ही नहीं सकता।"

यह कहकर शिप्टन उस निशान को नापने के लिये आगे बढ़ा। वह निशान चपटा, एड़ी की ओर से बर्फ में धंसा हुआ और पंजे की ओर से पिचका हुआ था। उसने वारेन की ओर देखकर

कहा—वारेन! यह तो किसी जंगली जन्तु का पांव दिखाई देता है।

वारेन—शिप्टन! परन्तु सोचो तो, एवरेस्ट पर १७००० फुट की ऊँचाई तक ही हरियाली की अन्तिम सीमा है और कोई भी जीवित जन्तु इससे ऊपर नहीं रह सकता। इकल्ले-दुकल्ले पत्ती चीलें आदि २०,००० फुट तक उड़ते देखे गये हैं किन्तु स्पष्ट है कि ये निशान किसी पत्ती के पंजों के नहीं हैं। ये भालू, लोमड़ी और गीदड़ के निशान भी नहीं हो सकते। यह पंजा तो आदमी के पंजे से मिलता-जुलता है।

इसी समय शेरपा तेनसिंह कंधे पर बोझ उठाये हुए वहाँ आ पहुँचा। उसने कहा—

"साहब! यह आदमी के पाँव का निशान नहीं है। यह तो मीटोकंगमी का है। हाँ, ठीक उसी का है। मैंने अच्छी तरह से पहचान लिया है।"

शिप्टन—मीटोकंगमी किस बला का नाम है?

तेनसिंह—साहब! यह हिमालय का दैत्य है। बनमानुस सा, जंगली, भालू के से बालों वाला, आँधी-सा तेज भागने वाला, और शेर-सा खूँखार यह मीटोकंगमी है। हम लोग तिब्बती भाषा में इसे मीटोकंगमी कहते हैं, जिसका अर्थ है घिनौना हिम-मानव। कई लोग इसे 'येती' भी कहते हैं। वे आदमी का मांस खाते हैं और एक घूँसे से ही याक तक को मार गिराते हैं।

शिप्टन—तब तो बड़ा विचित्र जन्तु है। क्या कभी तुमने उसे देखा भी है ?

तेनसिंह—हाँ साहब ! कुछ वर्ष हुए मैंने उसे अपनी आँखों से देखा था। मैं और कई मेरे साथी जा रहे थे कि पास के वृक्षों में से सहसा 'येती' निकल आया। वह पाँच फुट छः इंच के लगभग ऊँचा था और उसका सारा शरीर भूरे बालों से ढका हुआ था। न उसकी दुम थी और न नाखुन। उसका मुँह बालों के बिना था और लाल था। हमें देखकर 'येती' अपनी पिछली टाँगों पर खड़ा हो गया और फिर आँधी के वेग से भागता हुआ आँखों से ओझल हो गया।

तेनसिंह की बात समाप्त होते-होते कई कुली आ चुके थे।

एक कुली ने कहा—साहब, मैं झूठ क्यों कहूँ। मैंने तो 'येती' को अपनी आँखों से कभी नहीं देखा। हाँ, मेरी स्त्री और उसके घरवालों ने उसे आमने-सामने खड़े हुए देखा है। तिब्बत में हिम-मानव की कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। साहब ! आप तो नैपाल, सिक्किम और तिब्बत से होते हुए आ रहे हैं, क्या आपने हिम-मानव को कभी नहीं देखा ?

शिप्टन—मैंने हिमालय पर देवताओं के निवास की बात तो कई बार सुनी है, किन्तु हिम-मानव के तथा उसके यहाँ रहने के विषय में आज पहली बार तुम्हारी जबानी सुन रहा हूँ।

कुली—साहब ! यह कलियुग है, कलियुग ! आज इन पहाड़ों

पर देवता कहाँ ? वे दूर कैलाश पर चले गये हैं। इन पहाड़ों पर अब दैत्यों का निवास है।

शिप्टन—तो क्या तुम्हारा मतलब है कि हिमालय में ऐसा हिम-मानव एक नहीं अपितु कई हैं ?

कुली—हाँ साहब ! कुलमहारी और कैरोला में तो उनकी बस्तियाँ हैं। 'येती' और उनकी औरतें वहीं रहती हैं। उनका एक पूरा कुटुम्ब इन पहाड़ों पर रहता है। वे गुफाओं में रहते हैं और शिकार की तलाश में बर्फ़ में बहुत ऊँचाई तक चले जाते हैं। हो सकता है कि उनमें से कोई 'येती' यहाँ से होकर गुजरा हो।

लामाओं का बिहार पास ही था। जब शिप्टन वहाँ गया तो उसने लामा से हिम-मानव के विषय में पूछा। लामा ने कहा—इस अकेली पहाड़ी पर पाँच हिम-मानव रहते हैं। हम उन्हें और उनके पद-चिह्नों को प्रायः देखा करते हैं।

शिप्टन—क्या वास्तव में वे दैत्य हैं या बनमानुसों की ही जाति का नाम हिम-मानव या येती है।

लामा—वस्तुतः वे भी कभी हमारे जैसे ही सभ्य मनुष्य थे। तिब्बत में यह नियम है कि घोर अपराध करने वाले मनुष्य को भी फाँसी नहीं दी जाती। हाँ, उसे जीवित ही नगर से बाहर निकाल कर हिमालय में मरने के लिये छोड़ दिया जाता है। उनमें से कई तो बर्फ़ में गल कर मर जाते हैं और कई बर्फ़ से इतने हिलमिल जाते हैं कि रहते-रहते वे हिम मानव या बर्फ़ के आदमी बन जाते हैं। उनके शरीर पर लम्बे-लम्बे बाल उग आते हैं और वे मांसा-

हारी जन्तुओं के पीछे घूमते और उन्हें मार कर खाने लगते हैं। इस प्रकार हिम-मानवों की एक जाति बन गई है। वे जहाँ-तहाँ हिमालय की पहाड़ियों में रहते हैं और इक्के-दुक्के यात्री पर आक्रमण भी कर बैठते हैं।

लामा ने यह बात अपने विश्वास के अनुसार कही। तिब्बत में हिम-मानवों के विषय में और भी कई कहानियाँ प्रचलित हैं। वस्तुतः हिम-मानव कौन हैं, किस जाति के हैं और बर्फ में क्यों रहते हैं, यह आज भी सभ्य मानव के लिए एक रहस्य बना हुआ है। हाँ उनके पद-चिह्न एक नहीं बीसियों यात्रियों ने देखे हैं।

सब से पहले १८८९ में जब करनल राल री० वडेयल सिक्किम के उत्तरी भाग का दौरा कर रहे थे तो एक जगह बर्फ में उन्होंने हिम-मानव के पद-चिह्न देखे।

उसके कई साल बाद मिस्टर इग्नाइट हिमालय की यात्रा करने आये तो उन्होंने भी ये चिह्न देखे। मिस्टर इग्नाइट इस घटना को यूँ बताते हैं—

मैं खेमा गाड़ने के लिये बर्फ में कोई उपयुक्त स्थान देख रहा था कि सहसा मुझे कोई आहट सुनाई दी। मुझे निश्चय था कि मेरे कुली अभी बहुत दूर हैं और उनमें से कोई भी मेरे पास इतना शीघ्र नहीं पहुँच सकता। मैंने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा तो कोई बीस कदम की दूरी पर एक आदमी लगभग छः फुट ऊँचा नवम्बर की सख्त सर्दी में भी नंगा खड़ा था। उसकी नाक चपटी, मुँह चौड़ा, रंग गेहुँआ और बाल घुंघराले थे। टांगें, बाहें और

छाती बालों से ढकी हुई थी किन्तु मुँह सफाचट था। उसकी पिछली टांगें झुकी हुई थीं। फिर भी वह जंगली जन्तु न था, शक्ल-सूरत से सब तरह से मनुष्य था। शायद कई पीढ़ियाँ पहले हमारे पुरखाओं की भी वैसी ही शक्ल रही होगी। मैदानों में रहने के कारण हम लोग सभ्य बन गये और हमारी आकृति भी बदल गई किन्तु जंगलों में रहने के कारण उनकी शक्ल में कोई परिवर्तन न हुआ। शुक्र यह हुआ कि उस प्राणी ने मुझे नहीं देखा। वह टकटकी लगा कर पहाड़ी के नीचे किसी वस्तु को देख रहा था। शायद किसी जन्तु या दूसरे शिकार पर उसकी दृष्टि पड़ गई थी और वह उस पर लपकने का अवसर ढूँढ रहा था। मेरा यह विचार सत्य ही निकला जब कोई पाँच मिनट तक यूँ खड़े रहने के पश्चात् वह सहसा एक गोली के से वेग से नीचे की ओर भागा। बर्फ़, ग्लेशियर, चट्टानों और खड्डों की उसके लिये कोई रुकावट न थी। वह उनको फांदता हुआ पल भर में कहीं ओझल हो गया।

इसी प्रकार एक इटैलियन फ़ोटोग्राफ़र ने भी, जिसका नाम टौम्जी था और जो हिमालय के चित्र लेने के विचार से यात्रा कर रहा था, कबूर की पहाड़ियों के पास हिम-मानव को देखा। टौम्जी ने पहले उसे बनमानुस समझा, नहीं तो वह उसका फ़ोटो लेना न भूलता। हिम-मानव बड़े वेग से पहाड़ की ओर बढ़ा जा रहा था। टौम्जी ने देखा कि वह मनुष्य की आकृति का था और सीधा चल रहा था। बीच-बीच में वह झुक-झुककर टहनियाँ, पत्ते और जड़ें तोड़ता जाता था। अन्त में वह एक घनी झाड़ी के पीछे

ओझल हो गया। टौम्जी उसके पाँवों के निशानों पर चलता हुआ डेढ़ दो मील तक उसके पीछे गया किन्तु वहाँ उसे कुछ भी दिखाई न दिया। २२ सितम्बर १६२१ के पहले पर्वतारोही दल ने फिर २०,००० फुट की ऊँचाई पर वह पदपंक्ति देखी।

खैर, ये बातें शिप्टन को बहुत पीछे पता चलीं। जब वह लामाओं के बिहार में से निकला तो उसके मन में उथल-पुथल मची हुई थी कि मनुष्य के संसार से ऊपर किसी अलौकिक शक्ति को स्वीकार करे या नहीं। न "हाँ" कहते बनता था और न "ना।" क्योंकि यह केवल सुनी-सुनाई बात ही न थी अपितु अपनी आँखों से वह उन अनोखे निशानों को बर्फ में देख चुका था। इसी द्विविधा में पड़े-पड़े सहसा उसने आकाश की ओर दृष्टि डाली जो कि दिव्य रहस्यों की खान है। किन्तु आकाश में उसे बर्फ के छितराते असंख्य फुग्गों के अतिरिक्त और कुछ न दिखाई दिया। ऐसा लगता था मानो उसका रास्ता रोकने के लिये सारा आकाश नीचे उतरता आ रहा है। बर्फ के कोमल फूलों को बमों का वेग देने के लिए उत्तरी हवा प्रचण्ड से प्रचण्डतर होती जा रही थी। शिप्टन और उसके साथियों में से एक मौसमी जाँच-पड़ताल करके इस निश्चय पर पहुँचा कि ये तूफान सूर्य की सीधी किरणों के कारण चल रहे हैं और सारी ग्रीष्म ऋतु में उनके रुकने की कोई सम्भावना नहीं। ऐसी अवस्था में एक कदम भी आगे बढ़ाना न उचित ही था और न सम्भव ही। इधर एवरेस्ट पर चढ़ने के सब रास्ते बन्द थे, उधर बिना कोई साहस का काम किए दल के सदस्यों का वापस लौटने

को जी न चाहता था। खाली समय से लाभ उठाकर दल के सदस्यों ने रौंगबुक के पूर्व और पश्चिम में स्थित दूसरी चोटियों पर चढ़ना आरम्भ कर दिया। इस अन्तर में वे २६ चोटियों पर चढ़े और पाँच बार २३००० फुट की ऊँचाई तक पहुँचे। हर बार उन्होंने यही देखा कि मानसून काल में इस ऊँचाई से ऊपर बर्फ जमती नहीं, अपितु नर्म और पोली रहती है। पोली बर्फ पर यात्रा करना असम्भव सा है, अतः दल ने वापस लौट जाने का निश्चय किया। इस यात्रा में शेरपा तेनसिंह शिप्टन के साथ २३००० फुट की ऊँचाई तक चढ़े। पीठ पर भार लादकर उसे पर्वतारोहियों के साथ और कहीं-कहीं उनसे भी आगे-आगे रहते देखकर शिप्टन की तेज निगाहों से यह छिपा न रहा कि यह शेरपा साहस के काम में किसी से पीछे 'रहने वाला नहीं। अपनी यात्रा के अन्त में शिप्टन ने कहा—

"यह ठीक है कि हम इस प्रयत्न में २३००० फुट से ऊपर नहीं चढ़ सके किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि एवरेस्ट सदा अजेय ही रहेगा। हर असफलता के साथ मनुष्य का ऊँचाई पर विजय पाने का आकर्षण बढ़ता ही जाता है। हमें किसी भी परिस्थिति से निराश नहीं होना चाहिए। जब मैलोरी, इरवाइन, विलसन और कई शेरपा कुली इस मार्ग में इतने बलिदान दे चुके हैं फिर भी साहस नहीं हारे तो हमें कोई अधिकार नहीं कि हम निराश हो जावें। एवरेस्ट की ऊँचाई तो जितनी है उतनी ही रहेगी परन्तु मनुष्य का साहस हर असफलता से दुगुना हो जाता है।"

छठा अभियान

(१९३६)

अप्रैल १९३६ में एक दल अपने साथ थोड़ी सामग्री किन्तु बहुत-सी आशाएँ लेकर दार्जिलिंग से चला। इस दल के नेता थे ह्यू रटलेज जो एवरेस्ट पर तीसरी बार किन्तु नेता बनकर दूसरी बार जा रहे थे। उन्होंने अधिकतर अपने पिछले साथियों को साथ लिया था :—

१. शिप्टन	५. वारेन
२. हैरिस	६. विग्रम
३. कैम्पसन	७. औलिवर
४. स्मिथ	८. गैविन

स्वास्थ्य और बेतार के तार का प्रबन्ध करने के लिये विशेषज्ञ अलग थे।

जब २५ अप्रैल को यह दल रौंगबुक ग्लेशियर तक पहुँचा तो एवरेस्ट एड़ी से चोटी तक नीला दिखाई दे रहा था। यह मौसम के बिल्कुल अनुकूल होने के लक्षण थे। इससे पहले कि वे क़दम आगे बढ़ाते, बेतार के तार द्वारा उन्हें सन्देश मिला कि मानसून

चल पड़े हैं। अगले ही दिन फिर सन्देश मिला कि बादल दार्जिलिंग की पहाड़ियों से टकरा रहे हैं। इस सन्देश के साथ ही दल की आशाएँ निराशा से टकरा गईं। ३० अप्रैल को सचमुच एवरेस्ट की चोटी पर बादल दिखाई देने लगे। दल ने विपत्तियों के बादलों को मँडराते देखकर भी चढ़ाई आरम्भ कर दी। वे चढ़े, चढ़े और खूब चढ़े—छठे कैम्प तक भी पहुँच गये, किन्तु १० मई हो चुकी थी। बर्फ़ ने ११ मई भी न होने दी और जोर-शोर से बरसने लगी। दल न आगे बढ़ा न पीछे—वह वहीं रुक गया। इतनी दूर पहुँचकर पीछे लौटने में कितना दुःख होता है यह उन्हीं का हृदय जानता है, जिन्हें बार-बार चढ़कर उतरना पड़ता है। फिर भी शाबाश है उनको कि वे हौसला नहीं हारते। इस दल ने भी छठे पड़ाव पर प्रतीक्षा की थी और इतनी की कि आरोही उकता गये, किन्तु बादल छटने पर न आये। एवरेस्ट पर नित नई बर्फ़ गिरने लगी। ये लोग नीचे उतर आये।

वे फिर चढ़े, फिर उतरे। फिर चढ़े फिर उतरे, किन्तु अब छठे पड़ाव तक भी न पहुँच पाये। हैरिस और शिप्टन ने सोचा, "हो सकता है, हमारी योजना में कोई कमी हो। अब तक हम नार्थपोल की ऊपरी ढलान को पार करके चढ़ने का यत्न करते रहे हैं, क्यों न ऊपरी ढलान की अपेक्षा नीचे की ढलान को अपनाया जाये।" यह सोचकर दोनों नीचे की ढलान से नार्थपोल को पार करने का यत्न करने लगे। शिप्टन के बूटों की कीलों ने बर्फ़ में पाँव जमाने में बहुत सहायता दी। दोनों एक दूसरे के साथ रस्सी बाँधकर छिपकली की तरह

बर्फ़ पर रेंगते हुए ऊपर चढ़ने लगे। इस प्रकार वे २३००० फ़ुट की ऊँचाई तक चढ़ गये और आगे भी चढ़ते जाते यदि बर्फ़ का एक टुकड़ा लुढ़कता हुआ सारी सतह को नीचे न धकेल देता। बर्फ़ के साथ-साथ सतह सरकने लगी और सतह के साथ-साथ ये दोनों पर्वतारोही भी। हैरिस तो साहस करके बड़ी कठिनाई से एक ओर कूद गया किन्तु शिप्टन बर्फ़ के साथ ही नीचे लुढ़कता गया। हैरिस ने झटपट अपना कुल्हाड़ा बर्फ़ में धँसाया और सारा भार उस पर डालकर रस्सी को भी उसी से बाँध दिया। रस्सी बँधते ही एक झटका लगा और शिप्टन लुढ़कते-लुढ़कते रुक गया। कुछ देर तक वह सिवाय हाँपने के और कुछ न कर सका।

नीचे खड़े हुए साथी इस रोमांचकारी दृश्य को हृदय थाम कर देख रहे थे। उनकी कँपकपी तब बन्द हुई जब हैरिस और शिप्टन सकुशल उनके बीच आ खड़े हुए। तब से वे कभी न भूले कि मानसून के दिनों में बर्फ़ में नार्थपोल से ऊपर चढ़ने में कितना भय है। शिप्टन को अपना १९३५ वाला अनुभव स्मरण हो आया कि २३००० फ़ुट की ऊँचाई पर बरसात के दिनों में बर्फ़ नहीं जम पाती। इसलिए और ऊपर चढ़ने का प्रयत्न करने में कोई बुद्धिमत्ता न थी। दल ने कुछ दिन नार्थपोल से नीचे ही नीचे घूम-फिर लेने का निश्चय किया।

उनका यह भ्रमण भी व्यर्थ न गया। इस दौरान में उन्होंने वे दृश्य देखे जिन्हें देखने के लिए लाखों हृदय और करोड़ों आँखें आजीवन तरसा करती हैं। रटलेज बताता है कि—

"एक दिन मैं लगभग १५००० फुट की ऊँचाई पर घूम रहा था कि मुझे निर्मल जल की एक झील दिखाई दी। पीछे मुझे पता चला कि इसी का नाम लाखा झील है। उस झील के दक्षिणी किनारे पर मुझे एक टापू दिखाई दिया जिसमें मन्दिर के ढंग का एक कच्चा चबूतरा बना हुआ था। इतनी ऊँचाई पर उस निर्जन प्रदेश में चबूतरे को देखकर मेरा आश्चर्य बढ़ा और मैं उस टापू को लक्ष्य बनाकर चल पड़ा। वहाँ जाकर मैंने देखा कि एक साधु पद्मासन लगाये ध्यान-मग्न बैठा है। उसकी दोनों आँखें बन्द थीं और वह लकड़ी के समान सीधा तनकर बैठा हुआ था। उसकी पलकों पर धूल जम चुकी थी और आसपास कहीं भी पांवों का कोई चिह्न मुझे दिखाई न दिया। इससे मैंने अनुमान लगाया कि साधु कई सप्ताहों से इसी स्थान पर बैठा है और उसकी सेवा के लिये कोई चेला या साधु उस स्थान पर नहीं है। मैंने जी भरकर उस साधु को देखा और मन ही मन उसे प्रणाम करके लौट आया। एवरेस्ट की राह में मैंने कई सौ मील दूर तिब्बत में ही इस साधु के विषय में सुना था। भक्तों ने बताया कि वह मथुरा का रहने वाला है और वर्ष में चार छः बार ही समाधि से उठता है। पहाड़ पर बर्फ़ पड़ जाने से पहले ही भक्त लोग साधु के लिए कुछ भोजन-सामग्री वहाँ छोड़ आते हैं। वह साधु कई बरसों से लगातार वहीं रहता है और बर्फ़ में भी ध्यानमग्न रहता है। भोजन आदि करके वह फिर पहले से भी लम्बी समाधि में बैठ जाता है, इसके बाद भी मैंने सुना कि एक बार कुछ लोग साधु के लिये भोजन-सामग्री ले जाते हुए बर्फ़

की कगार फट जाने से उसमें दबकर मर गये। इसके बाद कोई भक्त उसके पास गया या नहीं, इस बात का मुझे पता नहीं और वह साधु अब भी जीवित है या नहीं, इसके विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता।

इस दृश्य को देखकर रटलेज की रुचि बढ़ी। वह विशेष रूप से साधुओं की खोज में इधर-उधर घूमने लगा। एक बार की दूसरी घटना का वर्णन करते हुए रटलेज लिखता है—

"इसी यात्रा में मैं एक भयानक घाटी में पहुँचा जिसके एक तरफ़ ऊँचा चूने का पहाड़ था और दूसरी ओर गहरी खाई। इस घाटी के कोई तीन मील ऊपर "बन्दीक" नाम का बौद्ध विहार है जिसमें तीन साधु और एक जोगिन रहते हैं। ये चारों जने ध्यान-मग्न योगियों की सेवा-सुश्रूषा के लिये रहते हैं। उनके आसपास कई गुफाएँ हैं जिनमें योगीजन लम्बी समाधि लगाये बैठे हैं। शरीर और इन्द्रियों को वश में करके आत्मा की चिन्ता में मग्न इन योगियों को देखकर एक बार मेरा सांसारिक हृदय हिल उठा। निश्चय ही वे संसार से ऊपर एक दिव्यलोक के देवता थे जो अभी पार्थिव शरीर से पूरी तरह अपना नाता न तोड़ सके थे।

इससे भी अधिक आश्चर्यजनक वे दृश्य होंगे जिन्हें मैं तो क्या कोई भी मानव देख नहीं पाया—न वहाँ तक कभी पहुँच ही सकता है। वे इससे भी बहुत ऊपर महानिर्वाण के लिये समाधि लगाये बैठे हैं। उनमें से कई २०० वर्ष से और कई इससे भी दसों गुणा अधिक समय से एक आसन, एक मुद्रा और एक ही

साँस में समाधिस्थ हैं। वे सांसारिक समय और तरीकों से ऊपर उठ चुके हैं और भीतरी प्रकाश की दुनियाँ में रह रहे हैं। वे शारीरिक और मानसिक सब तरह के दुःखों से छुटकर परम आनन्द का अनुभव कर रहे हैं, इसीलिए संसार की गिनती के अनुसार बरसों बीत जाने पर भी उनके लिए एक क्षण बीतता है। इस रहस्य को हम अनभिज्ञ मनुष्य क्या जानें ? हाँ, पहुँचे हुए लोग बताते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क में कुण्डलिनी नाम की एक नाड़ी होती है। संस्कृत में कुण्डलिनी जलेबी को कहते हैं। वह नाड़ी जलेबी की तरह कुण्डल मार कर सोई रहती है। यह नाड़ी ही मनुष्य की भीतरी आँख है। जो मन पहले इन्द्रियों को चलाता है उसी की राह बदल कर साधक लोग उसे कुण्डलिनी को जगाने में लगा देते हैं। मन की प्रेरणा से कुण्डलिनी जागकर खुल जाती है और उसका सिरा सुषुम्ना नाम की एक दूसरी नाड़ी से छू जाता है। बस उनके मिल जाने से वैसे ही आनन्द की धारा बहने लगती है जैसे बिजली के दो तार मिलने से बिजली। उस आनन्दमय वातावरण में पहुँचकर मन का काम रह जाता है केवल आनन्द के सागर में गोते लगाना। ऊपर से अमृत की फुहारें बरसती हैं और नीचे आनन्द की धाराएँ बहती हैं। "अनाहत नाद" नाम का मधुर संगीत गूँज कर मन को इतना मुग्ध कर देता है कि साधक पर जादू सा छा जाता है। बस आत्मा और परमात्मा दोनों मिल कर एक हो जाते हैं। इस आनन्द को शब्दों में नहीं बताया जा सकता। उसका स्वाद तो वही जानता है, जो उसे अनुभव करता

है। इशारे के लिये कबीर ने कहा है—

कहा कहे की है नहीं, देखादेखी बात,
दुल्हा दुलहिन मिल गये, फीकी पड़ी बरात।

इस प्रकार योगी लोग कई बरसों तक बिना हिले-डुले बैठे रहते हैं। कभी-कभी उन्हें प्रेरणा होती है तो समाधि से जागकर वे नीचे की भूमि में आते हैं। कुछ आहार आदि लेकर वे पहले से भी अधिक ऊपर चढ़ जाते हैं। कोई भी स्थान, कोई भी शिखर, कोई भी ऊँचाई उनकी पहुँच से बाहर नहीं होती।

आरामकुर्सी में धंसा हुआ हम-सा व्यक्ति अनायास ही कह सकता है 'ये सब मनघड़न्त गप्पें हैं।' हमारे संकुचित विचारों में यह बात आ ही नहीं सकती कि मनुष्य की शक्ति से भी ऊपर कोई शक्ति है। हम संसार और साहस इन दो में ही शक्तियों की सीमा मानते हैं। वास्तव में जहाँ संसार की भौतिक शक्तियाँ समाप्त होती हैं वहाँ से आत्मिक शक्तियों का आरम्भ होता है। साहस के चमत्कार तो वहाँ हाथ की सफाई से अधिक कुछ नहीं दिखाई देते। देखिये योग का एक साधारण-सा चमत्कार :—

डाक्टर डायरनफर्थ, जो कि हिमालय की कांचनजंघा चोटी पर चढ़ने वाले दल के नेता थे, लिखते हैं :—

"मैंने ऐसे कई तिब्बती साधक देखे हैं जो ध्यान-मात्र से शरीर में प्रचण्ड आग को पैदा कर सकते हैं। वे बर्फानी चोटियों पर केवल एक कुर्ता पहन कर रहते हैं। उनमें से जो साधक योग की क्रिया द्वारा अपने शरीर पर डाले हुए छः गीले

कपड़ों को सुखा सकता है उसे "शिष्य" या चेला कहा जाता है और जो ऐसे बीस कपड़ों की तह को अपने शरीर की गर्मी से सुखा दे उसे स्वामी जी कहा जाता है। वे लोग तमाशा दिखाने के लिये ये सिद्धियाँ प्राप्त नहीं करते अपितु अपनी इन्द्रियों पर विजय पाकर उनके द्वारा अपने प्रियतम को रिझाने के लिये।

पहले मैं भी इन सिद्धियों पर विश्वास नहीं करता था किन्तु एक दिन की घटना देखकर तो मेरा अविश्वास चकनाचूर होकर न जाने कहाँ गुम हो गया। घटना इस प्रकार है :—

एक बार पर्वत पर चढ़ते-चढ़ते हमारा एक अर्दली बीमार हो कर चल बसा। उसकी मृत्यु की सूचना देने के लिये हमने एक संदेशहर को १२ दिन की यात्रा तय करके दार्जिलिंग के मुख्य कार्यालय में जाने को कहा। १२ दिन के पश्चात् वह संदेशहर कार्यालय में पहुंचा तो पता चला कि जिस शाम को जितने बजकर जितने सैकिंडों पर वह अर्दली वहाँ मरा था ठीक उसी समय उतने ही बजे शेरपाओं ने उसकी मृत्यु की सूचना कार्यालय में पहले ही पहुंचा दी थी। जब मैं यात्रा से लौटकर दार्जिलिंग पहुंचा तो यह घटना सुनकर बड़ा चकित हुआ। शेरपाओं से पूछने पर पता चला कि वहाँ मिलैरपा नाम का एक तिब्बती साधु रहता है जिसने कड़ी तपस्या द्वारा एक जीवन काल में ही बुद्धपद प्राप्त कर लिया है। बुद्धपद प्राप्त होने का अभिप्राय होता है—एकांतवास और उपवास आदि द्वारा इन्द्रियों को वश में करके मन की शक्ति को इतना बढ़ा लेना कि संसार की कोई भी वस्तु उससे छिपी न

रह सके, कोई भी आवाज उसे सुनाई दिए बिना न रहे। दूसरे शब्दों में वह सर्वज्ञ बन जाता है। किसी विशेष नाड़ी में मन को केन्द्रित करके वह साधु कड़ी से कड़ी सर्दी में भी अपने शरीर को तवे के समान तपा सकता है, हवा में उड़ सकता है और जिस यात्रा को तय करते-करते साधारण यात्रियों को महीनों लग जाते हैं उसे वह घंटों में पार कर लेता है।

डा० डायरनफर्थ ने योग के जिस चमत्कार का वर्णन किया है वह हम अनाड़ियों के लिये भले ही अचम्भे की बात हो किन्तु हमारे सर्वदर्शी महर्षियों के सामने यह योग की एक मामूली-सी सिद्धि थी। इसका वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि योगदर्शन में लख गये हैं—

"काया काश सम्बन्ध संयमात्
लघु तूल समापत्ते आकाशगमनम्"

अर्थात् सांस की क्रिया द्वारा योगी लोग शरीर को इतना हलका बना सकते हैं जैसे कि रूई का एक फुनगा। उनकी इच्छा-शक्ति के सामने न कोई ठोस वस्तु रुकावट पैदा कर सकती है और न आकाश। उन योगियों को इच्छाचारी कहते हैं।

सचमुच मिस्टर ह्य् रटलेज और उसके दल के वे सदस्य धन्य हैं जिन्होंने उन पुण्यात्मा योगियों के दर्शन अपनी आँखों से किये या उनकी सच्ची कहानियाँ अपने कानों से सुनीं। इस प्रकार रटलेज का दल अखबारों के लिए अपनी सफलता का कोई चटकीला समाचार तो न ला सका किन्तु दिव्यशक्तियों के प्रति

दुनिया के उखड़े हुए विश्वास को फिर जमाने का एक अच्छा खासा मसाला लाने में समर्थ हुआ।

हिमालय से लौटते समय रटलेज ने लामा को एक कप भेंट किया जो उसे 'रायल नेवी' की ओर से इनाम के रूप में मिला था। लामाओं ने मंत्र लिखे कई पन्ने कप में भर दिये और उसे पूजा के पात्र के रूप में बरतने लगे। आज भी वह रुपहला कप आश्रम में विद्यमान् है। रटलेज की इस यात्रा को हम लोग भले ही भूल जाएँ किन्तु तिब्बत के लोग इसे सदा याद रखेंगे।

सातवां अभियान

(१९३८)

चिर-परिचित-चरिते चारुता चीयते का ?

अर्थात्

सुनते-सुनते कहानी पुरानी हो जाती है।

एक बार नहीं, दो बार नहीं, तीन बार नहीं, पूरे छः बार उत्तर की ओर से एवरेस्ट पर चढ़ने के प्रयत्न किये जा चुके थे। पर शायद यह दिशा ही मनहूस थी। टिलमैन ने अन्तिम बार इस ओर से चढ़ाई करने का निश्चय किया। १९३८ में उसने एवरेस्ट पर चढ़ाई की किन्तु सफल न हो सका। कभी-कभी सफलता की अपेक्षा असफलता की कहानी अधिक मार्मिक बन जाती है। यही बात इस अंतिम चढ़ाई के विषय में लागू होती है। पराजित टिलमैन के मुँह से ही उसकी असफलता की कहानी सुनिये।

"खच्चरों के गलों में रुनझुन बजती घण्टियों की आवाज में हमने अप्रैल १९३८ में प्रस्थान किया। हमारे दल में शाही तड़क-भड़क और अनावश्यक भीड़भाड़ न थी। गिने-चुने पर्वता-

रोही और गिने-चुने ही कुली थे। पर्वतारोही कुलियों से बढ़कर और कुली पर्वतारोहियों से बढ़कर—दोनों अपने काम में माहिर।

मुझे मिलाकर कुल सात पर्वतारोही थे, स्मिथ, शिप्टन, ओडियल, वारेन, लॉयड और औलिवर। कुलियों में तेनसिंह और पाँगसान का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आँगथार्के उनका नेता था और मैं पर्वतारोहियों का।

दार्जिलिंग से चलने से दो दिन पहले मैंने तेनसिंह को पर्याप्त धन देकर शेकारजाँग आदि पड़ावों पर आवश्यक सामान खरीद कर जमा करने के लिये आगे ही भेज दिया। वह काम मैं शायद तेनसिंह के अतिरिक्त और किसी को सौंपते हुए हिचकिचाता किन्तु उस पर मुझे पूरा विश्वास था। मैं उसे पहले से ही परिचित था और उसमें वे सभी गुण विद्यमान थे जो कि एक पर्वतारोही साथी में होने चाहिएँ। वह स्वभाव से नम्र और आज्ञाकारी है, व्यवहार में मेलमिलापी तथा काम करने में अनथक, चुस्त और सबसे आगे रहने वाला। उन दिनों वह तिब्बती पोशाक पहनता और कमर में खुखरी लटकाता था। घोड़े की पीठ पर या पैदल दोनों प्रकार की यात्राओं में उसकी गति एक समान थी। प्रायः वह अपने निजी उपयोग के लिए बहुत कम सामान रखता है और अकेले चलने में उसे विशेष आनन्द आता है। इसके साथ ही उसे पर्वतारोहण का विशेष अनुभव है। १९३८ में मेरे साथ जाने से पहले वह हिमालय की कई अन्य चोटियों पर भी चढ़ चुका था, इसलिए हिमालय की चप्पा-चप्पा भूमि से परिचित था। कहना

न होगा कि उसने प्रारंभिक पड़ावों पर हमारे पहुंचने से पहले पहले सब काम ठीक-ठाक कर रखा था।

७ अप्रैल को हमारा दल रौंगबुक ग्लेशियर पहुंचा और २६ अप्रैल तक हमने पहले, दूसरे और तीसरे पड़ाव भी स्थापित कर लिये। यह तीसरा पड़ाव वही नार्थपोल था जिस पर चढ़ने में पर्वतारोहियों की आधी शक्ति खर्च हो जाती है। हमने नार्थपोल के पड़ाव को साज-सामान से सुसज्जित किया और थकान मिटाने के लिए भगवान् ने ही आंधी और बर्फ भेज दी। दो एक दिनों के लिए हमें तम्बुओं में ही रुके रहना पड़ा और एक प्रकार से हम ताजादम हो गये।

ताजा बर्फ पड़ चुकी थी। यहाँ से आगे जब हम चले तो घुटनों तक बर्फ में धंस जाते थे। हमारी चाल बहुत धीमी और कठिन थी। सौभाग्य से तेनसिंह सबसे आगे जा रहा था और उसके बनाये हुए रास्ते पर पाँव रखने में हमें उतनी कठिनाई न होती थी। उसका काम बड़ा कठिन था फिर भी वह इतना तेज़ चल रहा था कि कभी-कभी हम से बहुत आगे निकल जाता था और उसे हमारे लिए रुकना पड़ता था। इस प्रकार चलने में पाँवों और टांगों पर तो बल पड़ता ही था किन्तु कमर की तो नस-नस खिंच जाती थी। एक-एक कदम हमारे लिए एक-एक मील के समान बनता जा रहा था। आखिर हम एक सीधी चढ़ाई के पास पहुँचे जहाँ बेशुमार बर्फ थी—गहरी और धोखा देने वाली। सारे दल का ऊपर चढ़ना कठिन ही नहीं असम्भव था, इसलिए मैं,

तेनसिंह और गिने-चुने साथी आगे बढ़े। हम सुबह से दोपहर एक बजे तक चलते रहे, तो भी हमने देखा कि अभी हम नार्थपोल के आस-पास ही भटक रहे हैं और कठिनता से २५००० फुट की ऊँचाई तक पहुँच पाये हैं। एक बार हमने पीछे की ओर घूमकर देखा। एक बार हमने अपने आगे मीलों तक फैली बर्फ़ की चादर पर दृष्टि दौड़ाई। कहीं भी मंज़िल का अन्त न था। थककर शरीर चकनाचूर हो चुका था। हम दो क्षण के लिए वहीं बैठ गये।

तेनसिंह ने कहा—पैर गीले हो गये हैं।

मैंने कहा—मेरे पांव तो जैसे साथ हैं ही नहीं। बिल्कुल सुन्न हो चुके हैं।

तेनसिंह—लेकिन दिन बड़ा सुहावना है। धूप पूरी चमक के साथ निकली हुई है। पर्वत पर चढ़ने के लिए ऐसे दिन सौभाग्य से ही मिलते हैं। इसलिए चलो आगे बढ़ चलें।

तेनसिंह अब भी बड़ी फुर्ती से ऊपर चढ़ रहा था मानो थकान का उससे कुछ काम ही न था। देखा-देखी, एक-दूसरे की होड़ में, हम लोग भी पीछे चले जा रहे थे।

एवरेस्ट पर मौसम के बदलते देर नहीं लगती। पहले दिन जितना अच्छा मौसम था, अगले दिन उतना ही गन्दा। हम लोग थे कि ढीठों की तरह आगे बढ़े जा रहे थे कि जब तक चढ़ सकें चढ़ते चलें किन्तु हर समय बादलों के उठने का भय मन में था। अभी पांचवें पड़ाव से हम ३०० फुट दूर ही थे कि धुआंधार बर्फ़ बरसनी आरम्भ हो गई। वह इस तेज़ी से आई कि मुझे सब

कुलियों को कहना पड़ा कि सामान का यहीं ढेर लगाकर नीचे भाग चलो।

मौसम खुला तो हम भी अपने गर्म थैलों में से बाहर निकले। कोई भी कुली जाकर सामान उठा लाने की हिम्मत न रखता था क्योंकि सब लोग हद से ज्यादा थक चुके थे। तब मैंने देखा कि तेनसिंह और पांगसान सामान की ओर बढ़ रहे हैं। कंधों पर बोझ उठाकर कई सौ फुट उतरना और कई सौ फुट चढ़ना कोई साधारण काम न था, विशेष रूप से जब कि पहले ही सामर्थ्य से अधिक परिश्रम करके वे चूरचूर हो चुके थे। उनके साहस और अनथक पुरुषार्थ का हमें लोहा मानना पड़ा। छः बजकर १५ मिनट पर हम लोग छठे पड़ाव पर पहुँचे—२७२०० फुट की ऊँचाई पर।

अगले दिन हम सूर्योदय से पहले ही चल पड़े। किन्तु यह हमारी ज्यादती थी। सर्दी ने हमें पीछे धकेल दिया। हमने सूर्य निकलने की प्रतीक्षा की तो बर्फ़ गिरने लगी। सर्दी हद से ज्यादा बढ़ गई। दल का कोई भी सदस्य ऐसा न रहा जिस पर सर्दी का कुछ न कुछ प्रभाव न हुआ हो। स्वयं तेनसिंह की आवाज़ कुछ देर के लिये बन्द हो गई। नीचे उतर जाने के बिना और चारा ही क्या था ?

हमने फिर ऊपर चढ़ने की कोशिश की किन्तु विजय-देवी हम से दूर थी—बहुत दूर !

बस उत्तर की ओर से एवरेस्ट पर चढ़ाई का यही अन्तिम प्रयत्न था।

आठवाँ अभियान

(१९५०)

"या निशा सर्व-भूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी"

अर्थात्—जिसे दुनियां वाले रात कहते हैं उसमें भी साधक लोग जागकर रहस्यों की खोज लगाया करते हैं।

जब सारा संसार दूसरे महायुद्ध की आग में धू-धू करके जल रहा था, तब भी हिमालय के शिखरों पर पूर्ण शान्ति का साम्राज्य था। वर्षों तक एक भी पर्वतारोही दल उनके रंग में भंग डालने के लिए न पहुँचा। १९३८ में एक दल ने हिमाकत की भी किन्तु एवरेस्ट के आधे रास्ते से ही वापिस लौट आया। यह एक प्राइवेट दल था और शेरपा तेनसिंह भी उसके साथ थे। आखिर १९५० की वसन्त ऋतु में हिमालय के आंगन में फिर कुछ हलचल के चिन्ह दिखाई देने लगे। कहना न होगा कि यह एक ब्रिटिश पर्वतारोही दल था। इसमें पांच अंग्रेज पर्वतारोही थे—

१. मिस्टर औसकर हौस्टन

२. उनके सुपुत्र चार्ल्स हौस्टन

३. मिसिज़ कौलसा

४. एण्डरसन बैकवैल

५. हिलमैन

और छठे भारतीय पर्वतारोही श्री तेनसिंह। १६५० में श्री तेनसिंह पहली बार पर्वतारोही के रूप में जा रहे थे, और एवरेस्ट के इतिहास में पहली बार ही दक्षिण की ओर से चढ़ाई की जा रही थी। तिब्बत, नार्थकोल और उत्तर दिशा—ये सदा के लिए दुनिया को भूल गये। उनका स्थान नैपाल, साउथकोल और दक्षिण दिशा ने ले लिया। वे लोग नैपाल की राजधानी काठमांडू से चले और इन्होंने एवरेस्ट के मूल स्थान में कुल छः दिन बिताये। ये केवल १८००० फुट की ऊँचाई तक चढ़ सके, बस यही इस यात्रा की कहानी है। कहानी तो छोटी सी है किन्तु एवरेस्ट के इतिहास में इसका महत्त्व बहुत बड़ा है। उस पर दक्षिण की ओर से चढ़ाई करने का प्रयत्न हुआ, यही बहुत बड़ी बात थी। छोटी चीज़ के बाद ही बड़ी की प्राप्ति होती है। कली के बाद ही फूल खिलता है।

नवां अभियान

(१९५१)

एरिक शिप्टन लिखते हैं—

"अचानक ही हमारी सलाह बन गई और अचानक ही सब तैयारियाँ हो गईं। यह सब कैसे हो गया मैं स्वयं भी नहीं जानता। हाँ, मैं इतना कह सकता हूँ कि जुलाई १९५१ के आरम्भ में मैंने अपने सब साथियों को सूचित कर दिया था कि एवरेस्ट पर चढ़ने के लिये तैयार हो जाओ, नैपाल सरकार ने अपने राज्य में से होकर शिखर पर चढ़ने की हमें आज्ञा दे दी है। महीना समाप्त होते-होते हमारा दल इंगलैंड से चलकर भारत भी पहुँच गया।

जब हम इंगलैंड से चले तो मेरे नेतृत्व में

१. बिल मोरी

२. मिकलवर्ड

३. टौम बोरडिलन

ये तीन ही अंग्रेज़ पर्वतारोही थे, किन्तु ज्यों-ज्यों हमारा दल एवरेस्ट की ओर बढ़ता गया त्यों-त्यों संसार के प्रसिद्धतम आरोही

भी हमारे दल में सम्मिलित होते गये। इनमें न्यूजीलैंड के ई० पी० हिलैरी और एच० ई० रिड्डीफोर्ड के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ही, साथ ही भारत के शेरपा तेनसिंह का सहयोग भी हमारे दल के लिए विशेष उत्साह का कारण बना। इनके अतिरिक्त मिस्टर ला और उनकी धर्मपत्नी को मिलाकर अंतिम चढ़ाई के समय हमारे दल की संख्या ९ थी। नौ की संख्या शुभ से भी शुभतर होती है। इसे आकाशमण्डल के नौ ग्रह मानो, व्रतों में नवरात्र मानो, या गणित के नौ अंक मानो, हर तरह से हमारे दल का एक-एक सदस्य अपने गुणों में इकाई था। दल में सभी एक-दूसरे के पूरक और एक-दूसरे के सहयोगी थे, हमारा दल एक था।

हमने अपना आधार-कैंप 'नामचे-बाजार' में बनाने का निश्चय किया। यह स्थान खोंबू जिले का एक प्रसिद्ध और व्यापारिक स्थान है। यहाँ तक पहुँचने के लिए भारत से चार मार्ग जाते हैं। पहला दार्जिलिंग से, दूसरा नैपाल की राजधानी काठमांडू से जो कि बहुत ही लम्बा है। तीसरा बिहार प्रांत के दरभंगा प्रदेश में स्थित जयनगर से। यह मार्ग अपेक्षाकृत छोटा तो है, किन्तु इसे तै करने में न गर्मियों में सुविधा है और न बरसात में। गर्मियों की कड़ी धूप में शरीर झुलस जाता है और बरसात में कीचड़, मच्छरों और मलेरिया का आतंक छाया रहता है। चौथा मार्ग योगवाणी से जाता है। योगवाणी, बिहार के उत्तर में स्थित है। पिछले बरस हौस्टन दल भी इसी मार्ग से गया था। उन्हें

नामचे-बाजार पहुँचने में एक पखवाड़े से भी अधिक समय लग गया था। हम भी अगस्त १९५१ में इसी मार्ग से चले।

शेरपा अंगनाथार्के मेरा पुराना मित्र था। मेरे आने का समाचार पाकर वह १२ अन्य शेरपाओं को साथ लेकर मेरे पास आया। इनमें एक स्त्री भी थी जो सोना खोंबू तक जा रही थी। हमने उन सब को कुली नियुक्त कर दिया।

योगवाणी से धारन तक ३० मील हम लारी में गये। मार्ग में हमें बरसात का प्रचण्ड रूप देखने को मिला। संयोगवश पहली बूँद बुधवार को गिरी। मेरे भारतीय साथियों ने बताया कि बुधवार की झड़ी शीघ्र थमने में नहीं आती। सचमुच तीन-चार दिनों तक बरसात रुकने के कोई लक्षण ही दिखाई न देते थे। २६ अगस्त को वर्षा रुकी। किन्तु सड़क का बुरा हाल था। हर सौ गज पर लारी कीचड़ में धंस जाती थी। हमें स्वयं खंदकें खोद-खोदकर पहिये निकालने पड़ते थे और लारी को धक्के लगाने पड़ते थे। अनुमानतः हम दो घंटे में ६ मील की रफ्तार से चल रहे थे। धारन में हम काफी रात बीते पहुँचे।

हमने अपना सामान तीस-तीस सेर के भारों में बाँधा हुआ था किन्तु कुलियों ने अधिक भार उठाकर अधिक मजदूरी पाने के विचार से एक-एक मन उठाना स्वीकार किया। इन कुलियों को प्रति-सेर प्रति-पड़ाव के हिसाब से मजदूरी देने का रिवाज है। अस्तु, हमें दोहरा परिश्रम करके सारा सामान नये सिरे से बाँधना पड़ा। इसी समय एक बड़ी मनोरंजक बात हुई।

एक सोलह-सत्रह साल का बालक हमारे पास आया और कहने लगा—मुझे भी कुली रख लो, साहिब !

मैंने कहा—तुम तो बहुत छोटे हो। इतना भार नहीं उठा सकोगे।

लड़का बोला—तो साहिब ! मुझे आधा कुली रख लो।

लड़के की इस बात पर सब हँसने लगे। मैंने उसके लिए बीस सेर का एक आधा भार तैयार करवा दिया। चढ़ाई चढ़ते हुए 'आधे कुली' ने इस फुर्ती और साहस का परिचय दिया कि मैं सोचने लगा—क्या ही अच्छा होता कि सारे ही कुली छोटे होते।

दोपहर को ५००० फुट की चढ़ाई आरम्भ हुई। पहले तो बहुत अधिक गर्मी थी। ऊपर से आग बरस रही थी और नीचे से बरसात की गुमसुम भाप उठ रही थी। वायु का नामोनिशान तक न था। थोड़ी दूर तक तो हमें ऐसा अनुभव हुआ कि किसी ने हमें धधकती भट्टी में झोंक दिया है।

दूर आकाश में खड़े दो-चार बादलों ने हमारी दुर्दशा को देखा। बादल स्वभाव से ही दयालु और परोपकारी होते हैं। उन्होंने धूप को अपने पर ले लिया और हमारे मार्ग में छाया कर दी। खरबूजा खरबूजे को देखकर रंग पकड़ता है। बादलों की देखा-देखी अलसाती हवा भी जाग उठी और उसके शीतल मंद झोंकों ने धरती से उमड़ती भाप और संताप दोनों को दूर कर दिया। हम कुछ खुलकर चले। किन्तु दिन बन्द हो चला था।

थकान के बाद सुहावनी रात का क्या आनन्द होता है, यह हिमालय के आरोहियों से पूछो।

सुबह जागे तो सारी प्रकृति नहाई-धोई हुई सी दिखाई दी। रात को ... बदरिया बरस गई थी, चुपके-चुपके। चाँदी का मुकुट पहने पहाड़ की रानी दूर से हमें झिलमिल-झिलमिल इशारे कर रही थी। हमने उसके संकेतों पर अपने कदमों को तेज कर दिया और आगे बढ़ने लगे। दिन भर में हम ३५०० फुट की उतराई उतरे और फिर इतनी ही चढ़ाई चढ़े। बस, यही धनकूट था। हमने यहीं रात बिताई।

यहाँ तक हम बड़े आराम और उत्साह में आगे बढ़ रहे थे किन्तु रात भर में वे सब सुभीते सपना हो गये। धनकूट तक सड़क चौड़ी थी और सधी हुई थी इसलिए कुलियों ने हमारा साथ दिया था। धनकूट से आगे ऊबड़-खाबड़ रास्ता आरम्भ होता है। बहुत से कुली बिदक गये। नये मिले नहीं। नेपाल में लोगों के आंदोलन के कारण कोई भी व्यक्ति अपना घर छोड़कर दूर नहीं जाना चाहता था। हमने तो समझा कि यहीं हमारे पाँव डगमगा गये; किन्तु हमें मानना पड़ता है कि जब परिस्थिति मनुष्य के काबू से बाहर हो जाती है तो भगवान् ही कोई अनूठा साधन जुटा देते हैं। इलाके के गवर्नर ने जिसे नेपाली लोग 'बड़ा हाकिम' कहते हैं—हमारे आने का समाचार सुना तो हमारी सहायता के लिए १७ कुली हमारे साथ कर दिये। यहीं पर न्यूजीलैंड के हिलैरी और रिड्डीफोर्ड भी हमारे दल में आ मिले।

अब हमारा दल एक प्रकार से फिर से ताजादम हो चुका था। उधर रास्ते के दृश्य भी सुहावने थे। साम पहाड़ों की हिमाच्छादित चोटियाँ थीं और नीचे कलकल करती अरुण नदी। चलने में आनन्द अनुभव होने लगा था। सहसा एक जगह पर एक अनोखी उलझन उपस्थित हो गई। नदी की बर्फ़ीली धारा को पार करना था। नाव का कोई प्रबंध न था। हम एक दूसरे की बगलें झाँक रहे थे कि हमारे कानों में पहाड़ी गीत की ध्वनि सुनाई पड़ी। हम क्या देखते हैं कि एक नाव पर दो मल्लाह हमारी ही ओर आ रहे हैं। नाव भी कमाल की थी। एक पेड़ के तने को खोखला करके उसी की नाव बनाई गई थी और चप्पुओं के सहारे मल्लाह उसे खे रहे थे। हम उनका तमाशा देख रहे थे और वे हमारा। आँखें चार होते ही हमने उनसे सौदा पटाया। नदी का पाट कोई तीन सौ गज़ चौड़ा था और नाव पर तीन-तीन चार-चार आदमियों से अधिक के लिए स्थान न था। हम सबको पार उतारने में मल्लाहों को एक दर्जन चक्कर लगाने पड़े।

कई दिनों तक हमारी यात्रा आनन्द से चलती रही और १५ सितम्बर को जब हम मुंजयांग पहुँचे तो पहाड़ियों ने बताया कि बाढ़ से इंखुखोला का पुल बह गया है। अब हमारे सामने दो विकल्प थे। या तो हम अपने आप आरज़ी पुल बनाकर पार उतरते या फिर घूम-घुमा कर दूसरे रास्ते से जाते। चक्कर लगाना सुविधाजनक होता यदि वह पूरे १३ दिन का न होता। हमारा एक-एक दिन और एक-एक मिनट मूल्यवान था। हमने पुल बनाकर

पार उतरना ही उचित समझा। हमने शहतीर जुटाकर उसका पुल बनाया किन्तु पांव रखते ही वह बह गया। विवश होकर हमें लम्बा चक्कर लगाकर ही आगे बढ़ना पड़ा।

रास्ते में एक जगह ततैये का छत्ता था। भूल से एक कुली का भार छत्ते से छू गया। ततैये छिड़ गये। वे हम पर टूट पड़े। एक कुली को तो सात डंक लगे। उसका मुँह फूलकर कुप्पा हो गया। सारे दल में भगदड़ मच गई। जब हमें होश आई तो एक कुली को गुम पाया। हमने समझा कि कहीं डंक लगने से अन्धा होकर नीचे लुढ़क गया होगा। फिर भी उसका शव तो ढूंढ़ना ही होगा।

मैंने सहायता के लिए अंगथार्के को पास के गांव में भेजा और स्वयं घूम-घूम कर कुली को खोजने लगा। अचानक मैंने एक गुफा में झांका तो वह वहां बैठा कांप रहा था। मैंने पूछा तो बोला "मैं बर्र से छिपने के लिए यहां आया था।" दिन भर तो सब हनुमान बने रहे पर रात को सूजन जाती रही और अगले दिन हम लोग फिर यात्रा करने को तैयार हो गये।

पिछले दस दिनों से बादलों की बूंदा-बांदी होती रही थी। ग्यारहवें दिन अर्थात् २० सितम्बर को आकाश साफ हुआ तो हमने हवा में खुलकर सांस ली। पास ही शेरपाओं का एक गांव था। उन्होंने हमारे कुली शेरपाओं का हँस-हँसकर, ठहाके लगा-लगाकर, गले मिल-मिलकर स्वागत किया। शराब पिलाई, भोजन खिलाये। हम भी उनके प्रेम-मिलन में शरीक हुए।

इस गांव से आगे आधा मील तक दीवारनुमा सीधी चढ़ाई है जिस पर शहतीर टिका-टिका कर सीढ़ियां बनाई गई थीं। इसी चढ़ाई के ऊपर पहाड़ियों के बीच में नामचे-बाजार है। हमारा अनुमान था कि योगवाणी से इस स्थान तक पहुँचने में पन्द्रह दिन से अधिक न लगेंगे किन्तु एक महीना लग ही गया। रास्ता नया था; फिर हम चले भी तो मजे-मजे से। नामचे-बाजार १२२०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है, और नेपाल तथा तिब्बत को मिलाने वाला मुख्य मार्ग है। यह व्यापार का केन्द्र है लेकिन आबादी बहुत नहीं है। कुल साठ-सत्तर घर होंगे। वे भी वहां टिककर नहीं रहते। खानाबदोशों की भांति ऋतु के अनुसार इधर-उधर घूमते-फिरते रहते हैं और ठिकाने बदलते रहते हैं। नामचे-बाजार में हम दो दिन तक रहे और हमने आवश्यक सामान खरीदा।

यहां से हम साउथकोल का रास्ता ढूंढ़ने के लिए आगे बढ़े। यहीं एक ढलान पर पुराने मित्र तेनसिंह से मेरी भेंट हुई। वह मेरे साथ कई बार हिमालय और कराकुरम की पहाड़ियों पर जा चुका था और हम उसे "विदेशी खिलाड़ी" कहकर बुलाते थे। जब उसे मेरे आने का समाचार मिला तो वह अपने याकों को किसी के पास छोड़कर तीन दिन की यात्रा करके भी मुझे मिलने पहाड़ से नीचे आया। तेनसिंह अपने साथ दही और मक्खन के उपहार भी लेता आया। पहाड़ की यात्रा में अचानक अपने स्नेही मित्र के मिल जाने और दही-मक्खन की भेंट प्राप्त होने पर मुझे कितना हर्ष हुआ होगा यह शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता। तेनसिंह के आने से दल

में एक नई स्फूर्ति आगई और वह अन्त तक हमारे साथ रहा।

जैसे नार्थकोल के पास रौंगबुक का बिहार था वैसे ही साउथकोल के पास ध्यानबोधि नाम का एक बौद्ध-बिहार है। इससे कुछ ऊपर खोंबू ग्लेशियर में मीठे पानी का एक झरना भी है। वहीं १८००० फुट की ऊँचाई पर हमने अपना आधार-कैंप बनाया।

३० सितम्बर को हमने अपने दल को दो हिस्सों में बांटा। रिड्डीफोर्ड, वार्ड और बर्डिलन एक ओर से मार्ग का पता लगाने चले और मैं तथा हिलैरी दूसरी ओर से। दूसरी पार्टी को शायद सरल मार्ग मिल गया था, क्योंकि दोपहर को हमने दो आदमियों को बहुत ऊँचाई पर चढ़ते हुए देखा। उनके सामने बर्फ का एक बड़ा तोदा था जो तनिक-सी आंधी आने पर भी सरक सकता था। सांझ को जब दोनों इकट्ठे हुए तो दोनों के अलग-अलग विचार थे। हमारे मतभेद का विषय था आइसफाल। यह एक बर्फीले ग्लेशियर का नाम है, जहां से प्रायः बर्फ फिसला करती है। मेरा विचार था कि इस मार्ग से हम ऊपर नहीं चढ़ सकेंगे क्योंकि बर्फ नाजुक है और एक के बाद दूसरे आरोही के पांव पड़ने से वह खतरनाक सिद्ध हो सकती है। एक दो आदमियों ने चढ़ना हो तो बात दूसरी है किन्तु अभी तो कई पड़ावों का सामान ऊपर ले जाना था अतः कुलियों का भी साथ जाना अत्यावश्यक था। रिड्डीफोर्ड वाली पार्टी का कहना था कि आइसफाल वाला मार्ग नार्थकोल की अपेक्षा तो सरल है ही साथ ही उससे सरल मार्ग आस-पास कहीं नहीं मिल सकता। मुझे विश्वास था कि वे लोग रास्ते की कठिनाई को

भली प्रकार नहीं भांप पाये; फिर भी हम लोग उनके देखे हुए रास्ते को एक बार फिर देख आये। मुझे भी वह मार्ग अधिक कठिन प्रतीत न हुआ।

तीसरे दिन मौसम अच्छा था। हम लोग ऊपर चढ़ने लगे। बर्फ़ नर्म थी और पाँव कठिनाई से उठते थे, फिर भी हम चलते जा रहे थे। लगभग १० बजे हमें एक गरज सुनाई दी। वह किसी शेर-चीते की गरज न थी, अपितु घरघराहट से मिलती-जुलती थी, जैसी कि धरती के नीचे चलने वाली रेल की हुआ करती है। हमने सोचा कि शायद कोई तोदा टूटा होगा, किन्तु उस दशा में एक बार की गरज के बाद उसे बन्द हो जाना चाहिये। किन्तु वह आवाज़ आधा घण्टे—एक घण्टे—सारा दिन बन्द न हुई। तब हमने अनुमान लगाया कि ऊँचाई पर तूफ़ान गरज रहा होगा। वास्तव में वह थी भी तूफ़ान की ही गरज, किन्तु कमाल यह कि उसका एक झोंका भी हमारे तम्बू को न छू रहा था। ऊपर ताज़ा बर्फ़ भी पड़ रही थी।

अगले दिन हम चले तो इतनी ऊँचाई पर भी गर्मी से झुलसने लगे। हवा का नामो-निशान न था और सूर्य गर्म भट्टी की तरह चमक रहा था। पसीने से शरीर तर-तर हो गया और हमने बारी-बारी कोट, स्वेटर, कुर्ता और बनियान तक उतार दी। प्यास से गला सूखने लगा। एक जगह हमें झील का स्वच्छ पानी दिखाई दिया। हम लोगों ने मेंढकों की तरह छलाँगें लगा-लगाकर स्नान किया। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते थे, बर्फ़ इतनी नर्म होती जाती थी

कि उस पर चलना दूभर हो रहा था। हमें पता था कि २३००० फुट से ऊपर बरसात के दिनों में वर्फ नहीं जमती, इसलिए हम मौसम सुधरने की प्रतीक्षा में १५-२० दिन वहाँ घूमते-फिरते रहे।

२३ अक्तूबर तक बरसात समाप्त हो चुकी थी और दिन सुहावना था। आकाश में सूर्य का प्रकाश था और हमारे हृदय में आशा की किरण। हम लोग बड़े उत्साह से आगे बढ़े। दो-चार दिन पहले जिस गरज की आवाज़ हमें सुनाई दी थी, उसके परिणामस्वरूप एक लम्बी-चौड़ी दरार हमारे सामने फटी पड़ी थी। पहली बार जब हम इस मार्ग को देख गये थे तब से अब तक आकाश-पाताल का अन्तर पड़ चुका था। कहाँ तो तब हम लम्बी आशाएँ लेकर चले थे और कहाँ अब मन मसोस कर लौट आये। मुझे याद आया कि चार सप्ताह पहले हमने इस मार्ग को त्याग देने का जो विचार किया था वह ठीक ही था। किन्तु दिल नहीं मानता था कि साउथकोल तक पहुँचने से पहले ही लौट जावें। कम-से-कम उसका रास्ता देख लेने की साध हमारे मन में बनी हुई थी।

पाँच-छः दिन के बाद हम अपना सारा उत्साह और सारा बल बटोर कर ऊपर चढ़े। इस बीच में बर्फ की दरारें कुछ भर गई थीं और उन्हें पार किया जा सकता था, किन्तु एक नई विपत्ति आ खड़ी हुई थी। चारों ओर ग्लेशियर फिसल रहे थे और बर्फ टूट-टूट कर नीचे गिर रही थी। हम एक घण्टे तक वहीं बैठे हुए निराशा-भरी आँखों से इस दृश्य को देखते रहे। अन्त में हमने यही निश्चय

किया कि इस वर्ष आगे बढ़ना असम्भव है। यदि जीवित रहे तो अगले वर्ष फिर अपना भाग्य आज़माने आएँगे।"

इस प्रकार एरिक शिप्टन का दल एवरेस्ट शिखर के आधे रास्ते से लौट आया। वह अधिक-से-अधिक २३००० फ़ुट की ऊँचाई तक चढ़ सका।

दसवाँ अभियान

(१९५२)

१९५२ में एक नई उलझन पैदा हो गई। इधर से एक अंग्रेजी दल एवरेस्ट पर चढ़ने के लिये भारत पहुंचा, और उधर से एक स्विजरलैंड का दल भी। प्रश्न यह था कि पहले कौन चढ़े ? स्विस दल पहली बार ही एवरेस्ट पर चढ़ने के उद्देश्य से भारत आया था।

दोनों ने मिलकर विचारा कि यदि दोनों दल अलग-अलग रहकर चढ़ेंगे तो दुगुनी शक्ति और दुगुने धन का व्यय होगा और सफलता की आशा भी आधी होगी। क्यों न दोनों दल मिलकर चढ़ाई करें ? विचार अच्छा था और सबको पसन्द भी आया किन्तु जब नेता चुनने का प्रश्न उठा तो मिलकर चढ़ने की बात वहीं धरी रह गई। अन्त में यह निश्चय हुआ कि दोनों दल अलग-अलग जाएं, स्विस दल पहले अर्थात् १९५२ में और अंग्रेजी दल अगले वर्ष अर्थात् १९५३ में।

स्विस लोग पहाड़ों पर चढ़ने के लिए प्रसिद्ध हैं और वे आये भी पूरी तैयारी से थे। इसलिए उन्हें आशा थी कि शायद पहले

प्रयत्न में ही वे एवरेस्ट शिखर पर पहुंचने में सफल हो जाएं। दल के नेता प्रसिद्ध पर्वतारोही डाक्टर वैरस डूआंट थे और शेरपाओं के नेता तेनसिंह जो कि पहले भी कई बार एवरेस्ट पर चढ़ चुके थे। तेनसिंह के अतिरिक्त सभी पर्वतारोही स्विस थे।

२६ मार्च सन् १६५२ को स्विस दल नैपाल की राजधानी काठमांडू से चला और मध्य अप्रैल में नामचे-बाज़ार पहुंचा। दल की प्रारंभिक प्रगति बड़ी सन्तोषजनक रही। केवल एक सप्ताह में ही १६६०० फुट की ऊंचाई तक पहुंच कर खोंबू ग्लेशियर के पास एक झील के किनारे दल ने अपना आधार-कैंप बनाया। आइसफ़ाल के नीचे पहला पड़ाव १७२२० फुट की ऊंचाई पर और दूसरा पड़ाव आइसफ़ाल के आधे रास्ते में डाला। यही वह स्थान था जहां से गतवर्ष का दल वापिस लौट गया था। इस दल ने भी दो बार आइसाफल पर चढ़ने का साधारण यत्न किया किन्तु चढ़ न सका। अन्त में रोच, फ्लोरी, आस्पर तथा हौफ्स्टर ने भली प्रकर देखकर यह निश्चय किया कि आइसफ़ाल का ग्लेशियर ही एक ऐसा स्थान है जसां से ऊपर चढ़ा जा सकता है। वे लिखते हैं—"बहुत खोजने पर हमें ग्लेशियर की बगल में एक चबूतरानुमा मार्ग दिखाई दिया। पिछले वर्ष वाली दरारें अधिकतर भर चुकी थीं और उन्हें पार करके आगे चढ़ा जा सकता था। छुटपुट दरारों को तो सबने पार कर लिया किन्तु अन्त में १६ फुट चौड़ी एक दरार थी। ऊपर नीचे दाएं बाएं सब ओर से उसे लांघने के यत्न किए गये किन्तु उसे पार करने का कोई उपाय न निकल

हिमालय-अभियान
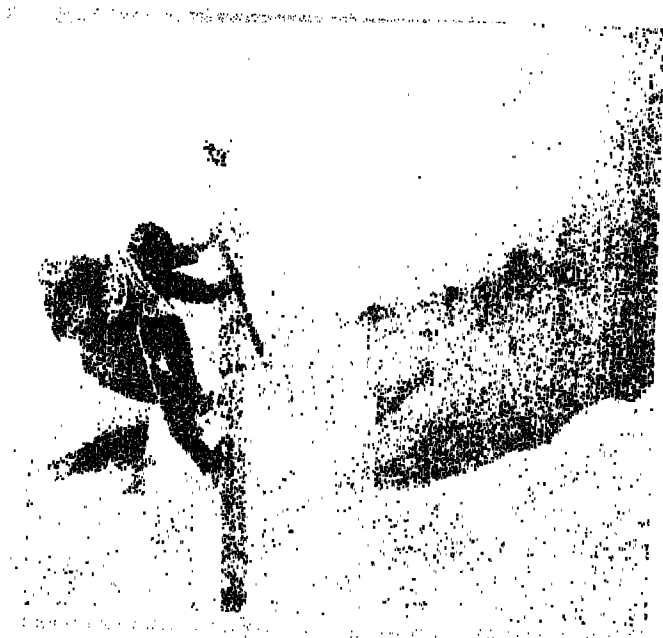
हजारों फीट गहरी बर्फीली खाई को सीढ़ी के पुल से पार करना
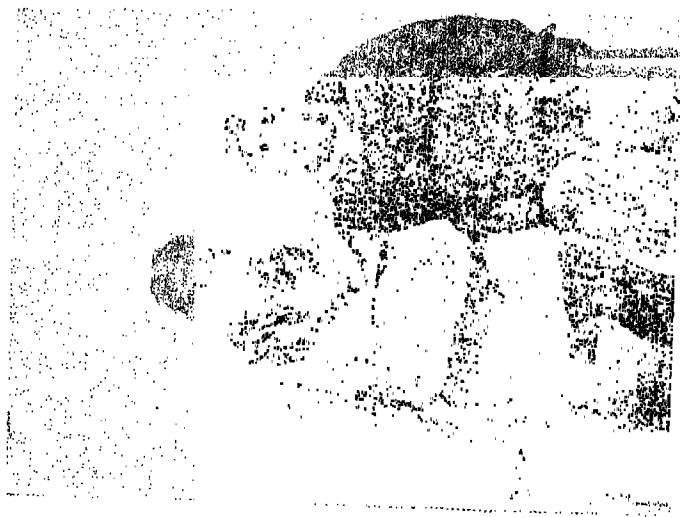
एवरेस्ट-विजेता—हिलेरी और तेनसिंह

सका। सहसा आस्पर को उपाय सूझा और उसने कहा—

"आप लोग रस्से के सहारे मुझे नीचे उतार दीजिए। भगवान् ने चाहा तो उतरने का कोई रास्ता ढूंढ़ निकालूँगा।"

प्रयोग करने के अतिरिक्त और चारा ही क्या था? उन्होंने आस्पर को रस्सी के द्वारा ६० फुट गहरी दरार में उतारा और वह झुक कर सामने की दीवार से छिपकली की तरह चिपक गया और बर्फ को काटता हुआ दूसरे पार पहुँच गया। इस पार हम थे और उस पार आस्पर। अब पुल बनाना सम्भव था। हमने आरपार चार रस्से बाँधकर एक झूलना पुल तैयार किया। पाँव जमाते हुए हम लोग तो पार उतर गये किन्तु धन्य हैं वे कुली जो १० दिन तक उस कच्चे पुल पर से सामान पार पहुँचाते रहे। वहाँ पुल टूटने का इतना भय नहीं था जितना कि ऊपर से बर्फ के लोदे लुढ़कने का। एक बार तो कुलियों के पार उतर जाने के कुछ मिनट बाद ही बर्फ फिसलती हुई पुल के ऊपर से गुजर गई। कुछ क्षणों के अन्तर से सब कुली बच गये।

इसके बाद हमने जल्दी-जल्दी पड़ाव बनाने आरम्भ किये। तीसरा पड़ाव तो दरारों के बीच ही डालना पड़ा। चौथा पड़ाव २११५० फुट की ऊँचाई पर और पाँचवाँ ह्नोत्से ग्लेशियर में २२६३० फुट की ऊँचाई पर बनाया। रास्ते में कई जगह हमें रस्सों के पुल बनाने पड़े और कई जगह चढ़-उतर कर ही गहरी खाइयाँ पार करनी पड़ीं। इस प्रकार शिखर का रास्ता हमने निकाला।

२४ मई को लैम्बर्ट, फ्लौरी, आबर्ट के साथ तेनसिंह, पासांग

आदि सात शेरपा आगे बढ़े। २५६०० फुट तक पहुँचते-पहुँचते सूर्य अस्त हो गया। साउथकोल तक पहुँचने की आशा जाती रही। खुले स्थान में मारे सर्दी के खड़ा होना भी कठिन था। हमने बर्फ में एक खोखला स्थान देखकर वहाँ दो तम्बू लगाये और गठरी बन कर पड़ रहे। सर्दी इतनी थी कि बिस्तर से हाथ बाहर निकालते न बनता था। यही जी चाहता था कि कोई गर्म-गर्म चाय का प्याला ओठों से छुआ दे तो गटागट पी जाएँ। सिवाय तेनसिंह के यह काम और कौन कर सकता था? वह सर्दी को झटक कर बिस्तर से बाहर निकल आया और उसने चाय बनाकर सब को पिलाई। नींद से पलकें भारी हो चली थीं। किन्तु सर्दी के कारण नींद पलकों के बाहर ही अटकी रही। पौ फटने तक हम एक भी झपकी न ले सके। उनींदे के कारण थकान दुगुनी हो गई थी। सभी शेरपा बीमार हो गये थे। केवल तेनसिंह अब भी मुस्करा रहा था। मेरा अनुभव है कि चढ़ाई में ज्यों-ज्यों परिस्थितियाँ कठिन होती जाती हैं त्यों-त्यों तेनसिंह का धैर्य निखरता जाता है। जब सब पस्त-हिम्मत हो जाते हैं तब भी वह हँसता-मुस्कराता हुआ दिखाई देता है। मुसकान का उससे पुराना और अटूट परिचय है। सब कुलियों को नीचे भेज देना पड़ा।

प्रातःकाल जब हमने चढ़ाई आरम्भ करने का निश्चय किया तो तेनसिंह बहुत प्रसन्न था। वह आगे-आगे चला और हम तीन आरोही उसके पीछे-पीछे। हवा इतनी तेज थी कि शरीर का संतुलन बनाये रखना भी कठिन हो रहा था, फिर भी हम हाँपते-

काँपते हुए २६३०० फुट तक जा पहुँचे। साउथकोल को हम पार कर चुके थे और एक ऊँची ढलान पर चढ़ने का यत्न कर रहे थे। लैंबर्ट और तेनसिंह साथ-साथ चढ़ रहे थे। २७५५० फुट पर पहुँच कर तेनसिंह ने सलाह दी कि यहीं तम्बू लगा लेना चाहिये। उसके पास केवल एक तम्बू ही तम्बू था। न सोने को थैले और न बिछाने को बिछौना क्योंकि यह सामान आबर्ट के हाथ से छूटकर नीचे गिर चुका था।

कुछ भोजन बच रहा था किन्तु स्टोव नहीं था। प्यास थी पर पानी नहीं था और हम चढ़ रहे थे शिखर की अन्तिम सीढ़ियाँ—बहुत ही नाज़ुक घड़ी थी। हमने बत्ती की टिमटिमाती लौ पर कुछ बर्फ़ पिघलाई और उसी के दो घूँट गले से उतारे। भूख से कुलबुलाती अंतड़ियों को धोखा देने वाली बात थी।

पानी पीकर हम उठे तो हाथ-पाँव नीले पड़ चुके थे। रुधिर का दौरा बन्द हो चुका था और छूने की शक्ति शून्य हो चुकी थी। हमने तलियों से एक-दूसरे को रगड़ कर रुधिर का संचार जारी किया। कदम उठाना सरल न था। घुटनों तक टांगें बर्फ़ में धंस रही थीं और हर तीसरे कदम पर साँस लेने के लिए ठहरना पड़ता था। हमने आक्सीजन सूँघने का यत्न किया किन्तु २८२१५ फुट की ऊँचाई पर आक्सीजन यन्त्र भी निष्फल सिद्ध हुआ। धौंकनी की तरह हमारी साँस चल रही थी, थकान से पाँव लड़खड़ा रहे थे, फिर भी हम चोटी तक चढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे। अब तक

मौसम में शान्ति थी किन्तु हमें शिखर के समीप पहुँचते देखकर वह भी बिगड़ उठा। तेज बर्फीली हवा के थप्पड़ों ने हमारे मुँह पीछे की ओर फेर दिये। हम लोग विवश होकर नीचे उतरने लगे। पड़ाव पर पहुँचकर हम सब सोने के थैलों में अधमुए से होकर पड़ रहे। स्वयं तेनसिंह भी थककर चूर हो चुका था और चाय पीने के लिए उसे हमें कई बार जगाना पड़ा। दूसरे दिन हम पाँचवें पड़ाव में उतर गये जहाँ हमारे शेष साथी शिखर पर चढ़ने के लिए दूसरा यत्न करने की तैयारियों में लगे थे।

२६ मई को डिटर्ट, रोचे, आस्पर, चैवेली तथा हौफ्स्टर, ये पाँच स्विस पर्वतारोही अपने साथ मिंगना, देर्से और सार्की आदि पाँच शेरपाओं के साथ पाँचवें पड़ाव से रवाना हुए।

आकाश निर्मल था किन्तु बर्फानी पवन साथ था। छठे पड़ाव तक पहुँचते-पहुँचते तीन शेरपा लौट आये। शेष दो की अवस्था भी इतनी अच्छी न थी कि वे सातवें पड़ाव तक चल सकते। डिटर्ट ने साहस करके कुछ कदम बढ़ाने का यत्न किया किन्तु शीत के कारण उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसकी टांगें साथ ही नहीं हैं और शरीर तथा मन का रिश्ता टूट चुका है। वह पाँव रखता कहीं था और पड़ता कहीं था। इसलिए वे लोग विश्राम के लिए रात भर रुक गये।

दूसरे दिन पहली जून थी। आकाश बिल्कुल निर्मल था और चोटी तक पहुँचने के लिए शायद इससे अच्छा अवसर कोई और

होता भी न, किन्तु पर्वतारोही हिम्मत किससे उधार माँगते। गहरी थकान के बाद रात के विश्राम ने और ऊँचाई की सर्दी ने उनके अंग-अंग की शक्ति निचोड़ ली थी। वे लोग वापस लौट आए।

नीचे के पड़ावों में हम लोग उनकी प्रतीक्षा में थे। तीन जून को सारा दल आधार-कैंप में उतर आया।

ग्यारहवाँ अभियान

(१९५३)

पूर्व दिशा ने घूँघट खोला। अधखुले झीने आँचल में से किसी का मन्द-मन्द मुस्काता गोल चेहरा दिखाई दिया। उसकी अनुपम रूपराशि बदलियों की राह धरती और आकाश में बिखर गई। एक बार विश्व का कण-कण सिन्दूर के अरुण-राग में रंग गया।

प्रभात की इसी पुनीत बेला में एक पहाड़ी युवती ने टीन के छत वाली, लकड़ी की झोंपड़ी से बाहर झाँका। अपनी दोनों अंजलियाँ बाँधकर उसने स्त्री-सुलभ सरलता के साथ उषा की प्रथम किरण को प्रणाम किया और हृदय का समूचा साहस बटोर कर बोली—

"आज मेरे प्रियतम विजय-यात्रा को जा रहे हैं। वे जिस राह से गुजरें, हे किरण ! तू उनकी राह को आलोकित करना।"

पूर्व दिशा के गुलाबी ओठों पर एक मधुर मुस्कान दौड़ गई, मानो गुपचुप भाषा में उस भोली पहाड़िन को कुछ कह गई हो—शायद कोई आशा का सन्देश।

युवती ने एक बार फिर उषा-किरण को प्रणाम किया और शीघ्रता से झोंपड़ी के भीतर चली गई।

यह युवती कोई और न थी, यह थी प्रख्यातनामा वीर तेनसिंह की पत्नी श्रीमती आँगलाहमू जिन्होंने अपने जीवन की प्रभात दार्जिलिंग की उन तूंगसूंग पहाड़ियों में देखी थी और १६३३ से उन्हीं रमणीक उपत्यकाओं में अपने प्रिय पति के साथ निवास कर रही थीं। १६५३ तक बीस वर्ष के इस लम्बे समय में आँगलाहमू के लिए कई शुभ क्षण आये जबकि उसने विजय-पथ की ओर प्रस्थान करते हुए अपने पति को, एक नहीं, अनेकों बार अपने हाथों विदाई दी और हर बार भारतीय गौरव श्री तेनसिंह जी मंजिल की राह में अधिक-से-अधिक सफलता प्राप्त करके लौटे। किन्तु, आँगलाहमू का हृदय किसी बार भी इतना अधिक हर्ष-विभोर न हुआ था, जितना कि १६५३ की इस प्रातः को। मानो किसी दिव्य शक्ति ने उसके अंतर में बैठकर चुपके से कह दिया हो—

"मुग्धे ! अधीर न हो ! इस बार तेरी साधना अवश्य सफल होगी। तेरे 'प्राण' निश्चय ही इस बार संसार के सर्वोच्च शिखर पर विजय प्राप्त करके लौटेंगे।"

बस, यही चेतना शुभ-शकुन बन-बनकर युवती के अंग-अंग में स्पन्दन पैदा कर रही थी। प्रत्येक दिशा मानो उसे शुभ-सन्देश देने के लिए बढ़ी चली आ रही थी। इसी शुभ बेला में आँगलाहमू, प्रथम किरण को प्रणाम करके लौटी।

प्रस्थान की वेला आ पहुँची थी। जब युवती दूसरी बार झोंपड़ी

से बाहर निकली तो उसके साथ एक सजीला युवक भी था। आयु होगी यही कोई अड़तीस उनतालीस बरस की। कद मंझला, आँखें छोटी किन्तु चमकदार। चेहरे पर स्वाभाविक मुसकान और पहाड़ी शेरपाओं की-सी सरल वेश-भूषा। यही थे विजय-पथ के विजयी यात्री श्री तेनसिंह नौरके। तेनसिंह युवती की ओर देख रहे थे और युवती उनकी ओर। आँगलाहमू हृदय से बहुत कुछ कहना चाहती हुई भी ओठों से कुछ न कह सकी। केवल निर्निमेष नयनों से उनकी ओर निहारती रही। पर्वतों की उपत्यका में पनपे पुनीत प्रेम की यही मौन मंगल-कामना थी।

तभी काँपती हुई एक झुर्रीदार माँसल मूर्ति, ममता के उद्गार लिए उनकी ओर बढ़ी। श्री तेनसिंह ने उसके दोनों चरण छुए। उन पिचके धँसे कपोलों में से दो ही शब्द निकल सके—

"बेटा! विजयी बनो! भगवान् तुम्हारा कल्याण करे!"

इसके साथ ही उसने अपने गीले हलके होंटों से शेर बेटे का मस्तक चूम लिया।

तेनसिंह ने गद्गद् स्वर में कहा :—

"माँ! इस बार मुझे पूरा विश्वास है कि यदि मौसम अनुकूल रहा तो मैं पर्वतारोहण का पिछला रिकार्ड (२८२१५ फुट) अवश्य तोड़ सकूंगा। मुझमें साहस और विश्वास है। ईश्वर से प्रार्थना है कि भाग्य भी हमारा साथ दे।"

पेमपेम और नीमा इसी अवसर की प्रतीक्षा में एक ओर सिकुड़ी खड़ी थीं। पेमपेम छोटी थी, पहले उसने पिता की गोद में

सरकते हुए कहा—"पिताजी, जल्दी लौटना! हम आपकी राह देखेंगी!" नीमा ने कहा—"पिताजी! विजय की सूचना हमें शीघ्र भेजना।"

वात्सल्य, ममता और प्रेम के इन मधुर उद्गारों को हृदय में संजोये श्री तेनसिंह ने तूंगसूंग पहाड़ियों से विदा ली।

चलते हुए वह जिस राह से भी गुजरे वहीं कदम-कदम पर उनकी जयजयकार बुलाई जाती थी। उन पर फूल बरसाये जाते थे। हर्षध्वनियों का उत्तर हर्षध्वनि से और अभिनंदन का उत्तर अभिनंदन से देते हुए वे दार्जिलिंग के उस स्थान पर पहुँचे जहाँ असंख्य जनसमूह प्रातःकाल से ही उनकी प्रतीक्षा में जमा था। श्री तेनसिंह के पहुँचते ही आत्मीयजनों ने आगे बढ़-बढ़कर उनका स्वागत किया। आज हर एक व्यक्ति उनका सम्मान करने में अपना अभिमान समझता था। श्री तेनसिंह भी किसी के गले लगकर, किसी से हाथ मिलाकर और किसी के चरण छूकर विदाई ले रहे थे।

इसी समय भीड़ को चीरता हुआ एक व्यक्ति आगे बढ़ा। उसने झुककर कोई वस्तु श्री तेनसिंह की ओर बढ़ाई और गम्भीर स्वर में कहा—

"मित्रवर! जब संसार के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ने में तुम्हें सफलता प्राप्त हो तो इसे एवरेस्ट शिखर पर लहरा देना।"

सबने देखा कि यह रेशमी कपड़े में लिपटा तिरंगा झंडा था और युवक रवीन्द्रनाथ बड़ी तत्परता के साथ उसे अपने मित्र को

अर्पित कर रहा था। श्री तेनसिंह ने अपने राष्ट्रीय ध्वज के प्रति पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करते हुए उसे अपने हृदय के समकक्ष संभाल कर रख लिया। शुभ अवसर पर श्रेष्ठ व्यक्ति के प्रति यह उचित-तम उपहार था।

अब श्री तेनसिंह केवल एक वृद्धा माता के लाडले बेटे, एक पहाड़ी युवती के प्रिय पति और पेमपेम तथा नीमा के प्यारे बापू ही न थे अपितु अपने भारतवर्ष के एक वीर सेनानी भी थे। वे मन में अटल विश्वास और कदमों में स्फूर्ति लिए एवरेस्ट पर चढ़ने वाले दल की ओर बढ़े।

मार्च का महीना था, वही महीना जब कि प्रकृति नई कोंपलों से पुलकित होने लगती है। डाल-डाल में और पात-पात में नये रस का संचार होने लगता है। १९५३ के इसी महीने में एक ब्रिटिश आरोही दल काठमांडू के पास भाटगांव में ठहरा हुआ था। आरोही प्रायः सभी अंग्रेज थे और उनका नेतृत्व स्वयं कर्नल हंट कर रहे थे। श्री तेनसिंह के आगमन पर दल में विशेष स्फूर्ति और प्रसन्नता के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। इसका एक विशेष कारण था। बात यह है कि पिछले कई वर्षों से आरोहियों की यह धारणा सी बन गई थी कि एवरेस्ट पर चढ़ने वाले दल में यदि तेनसिंह न हों तो वह दल अधूरा ही होगा। वस्तुतः १९३५ से लेकर १९५२ तक जितनी भी प्रमुख चढ़ाइयां चढ़ी गईं उनमें श्री तेनसिंह साथ थे। यही कारण था कि एवरेस्ट के दक्षिणी मार्ग का भी उन्हें उतना ही परिचय प्राप्त था जितना कि उत्तरी मार्ग का।

शायद, संसार के किसी भी व्यक्ति से अधिक श्री तेनसिंह एवरेस्ट की परिस्थितियों से परिचित हैं। फिर क्यों न उनके पहुँचने पर दल के नेता से लेकर कुलियों तक सभी को अपार प्रसन्नता होती ?

११ मार्च १९५३ को यह दल भाटगांव से नामचे-बाज़ार की ओर चला। यहां से नामचे-बाज़ार तक लगभग १७० मील का पहाड़ी पैदल रास्ता है। घोड़े, टट्टू और याक ही भार ढोने और सवारी के एकमात्र साधन हैं, वे भी केवल नामचे-बाज़ार तक ही। उससे आगे कुलियों द्वारा सामान एवरेस्ट के उच्चतम शिखर तक पहुँचाया जाता है। यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि पर्वतारोहियों की सफलता अधिकतर कुलियों की सफलता पर आश्रित रहती है। प्राय: पर्वतारोही जितनी भी ऊंचाई तक पहुँचते कुली उनके साथ ही ऊपर चढ़ते हैं। ऐसे बहुत कम अवसर आये हैं कि पर्वतारोहियों की पहुँच से कुली बहुत नीचे ही बढ़ने से रुक गये हों। प्राय: प्रत्येक अभियान में अन्तिम पड़ाव से पिछले पड़ाव तक तो कुली पहुँचे ही हैं। यह उनकी न्यून सफलता नहीं क्योंकि उनकी पीठ पर मन-मन भार होता है और चढ़ाई में एक-एक तोला, सेर-सेर के बराबर प्रतीत होता है। इसलिए पर्वतारोहण की सफलता में कुलियों को भी उतना ही श्रेय प्राप्त है जितना कि पर्वतारोहियों को। और कुलियों का यह काम हिमालय की गोद में बसने वाले वीर शेरपाओं के ही बस का है, हर एक का नहीं।

शेरपा लोग दार्जिलिंग के आसपास भारत और तिब्बत के

सीमान्त प्रदेश के रहने वाले हैं। उनका शरीर गठीला, चुस्त और नाटे कद का होता है। चुस्त पायजामा, बक्खू (लम्बा अंगरखा-नुमा चोगा), तिकोनी गोल टोपी, घुटनों तक सूत के बूट, बस यही उनका पहरावा है। वे बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं और स्त्रियों तथा पुरुषों की वेषभूषा में विशेष अन्तर नहीं। दोनों ही भार ढोते और परिश्रम करते हैं। अनुभवी इतने कि हवा का रुख देखकर ही वर्षा या बर्फ का अनुमान लगा लेते हैं। लाठी या कुल्हाड़े को गाड़कर ही भीतरी बर्फ के कच्चे या पक्के होने का पता लगा लेते हैं। पर्वतारोहण इनके लिए एक भयानक शौक है। जब हिमालय की बर्फानी हवाएं सरसराती हुई शरीर के आरपार निकल जाती हैं और बड़े-बड़े नामी पर्वतारोही हिम्मत हार बैठते हैं उस समय भी ये शेरपा लोग बर्फ को चीरते हुए तीर के समान आगे बढ़ते जाते हैं। वे मस्ती में गीत गाते, बांसुरी बजाते और चढ़ाई को खेल समझते हुए चलते जाते हैं। बहादुरों के लिए हर कठिन काम खेल होता है। शायद शेरपाओं से बर्फ भी कांपती है और हिमालय भी उनका लोहा मानता है।

शेरपा लोग केवल भार ही नहीं उठाते अपितु आरोहियों का पथ-प्रदर्शन भी करते हैं। हिमालय की चप्पा-चप्पा भूमि और ऊँचाई पर कठिनाइयों से उनका रोज़ का वास्ता है। एक प्रकार से हिमालयारोहण के आधार-स्तंभ भारतीय शेरपा ही हैं। विदेशियों के लिए भले ही हिमालयारोहण एक साहस का कार्य हो किन्तु शेरपाओं के लिए तो वह नित्य का व्यवसाय ही बन गया है।

उनके सरदार दार्जिलिंग, गंगटोक (सिक्किम) और काठमांडू में रहते हैं। जब कोई पर्वतारोही दल एवरेस्ट पर जाने लगता है तो इन सरदारों को सूचना भेज देता है। सरदार लोग कुली जुटाने का ठेका कर लेते हैं। श्री तेनसिंह भी इन्हीं वज्रमानव शेरपाओं में से एक हैं।

१९५३ के कर्नल हंट वाले दल में श्री तेनसिंह के अतिरिक्त अन्य चार मुख्य शेरपा थे। श्री तेनसिंह यद्यपि अंग्रेजी दल के सदस्य नहीं थे फिर भी दल ने अपने लाभ के लिए उन्हें सब प्रकार की सुविधाएं तथा सहयोग देने का वचन दिया था। इन मुख्य शेरपाओं के अतिरिक्त दल के साथ दो सौ कुली भी थे।

दल के पास पहनने को पतलूनें, ढीली जाकटें, बर्फानी बूट तथा तम्बू, रस्सियाँ, कुल्हाड़े, आक्सीजन यन्त्र, डिब्बाबन्द खाद्य-सामग्री—दूध, मक्खन, मुरब्बे, चाय, काफी, सूखे फल और औषधियां थीं। कुल मिलाकर आठ टन के लगभग सामान था। नामचे-बाजार तक सारा सामान टट्टुओं और याकों पर ले जाया गया किन्तु इसके बाद छोटे-छोटे बंडलों में बाँधकर कुलियों की पीठों पर बाँधा गया। एवरेस्ट की तलहटी से नामचे-बाजार लगभग बीस मील इधर है और आस-पास के प्रदेश में सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र है। १९५१ के बाद एवरेस्ट पर सभी चढ़ाइयां इसी मार्ग से होती रही हैं।

अब पहाड़ की चढ़ाई ढलान से सीधी हो चली थी और चढ़ने वालों की कमरें सीधी से दोहरी। अब तक जो चेहरे हँसते

मुस्कराते चले आये थे उन पर भी गम्भीरता छाने लगी। वे कुछ ही दिनों में तीसरे पड़ाव तक जा पहुँचे। यूं तो चरण से लेकर चोटी तक एवरेस्ट की अपनी ही निराली दुनियाँ है, अपने निराले ढंग और अपने ही किस्म के मौसम हैं किन्तु तीसरे पड़ाव के बाद तो भूमि का मानव यही अनुभव करने लगता है कि वह पृथ्वीलोक में नहीं अपितु किसी ऊपरी लोक में पहुँच गया है। निश्‍चय ही वह एक अपूर्व अनुभव होता है। आइये हिमालय-पुत्र श्री तेनसिंह के मुँह से ही यह मनोरंजक वृत्तांत सुनिये—

"कैंप ३ के साथ ही हमारा पृथ्वीलोक का रहन-सहन छूट गया। कोई भी बात धरतीलोक के समान न दिखाई देती थी। पतली हवा और अधिक ऊँचाई के कारण आँतें कमजोर पड़ गईं और खाने के प्रति अरुचि रहने लगी। कैंप चार तक पहुँचते-पहुँचते तो कोई भी वस्तु गले से नीचे उतरनी दूभर हो गई। इन कठिनाइयों का पूर्व अनुभव होने के कारण हमने चढ़ाई आरम्भ करने से पहले ही ऊँचाई और परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक पड़ाव के लिए विशेष हलका आहार तैयार करवा कर डिब्बों में बन्द कर लिया और उन पर पड़ावों के नाम और ऊँचाई के लेबिल लगा दिये थे। जहाँ तक पानी का प्रश्न था हम यथासम्भव उसे अपने साथ ले गये किन्तु अधिकतर जब हमें प्यास लगती थी तो हमने बर्फ को गलाकर ही प्यास बुझाई। वहां यदि बिना भूख के कुछ जबर-दस्ती खा लिया जाये तो उल्टा होकर निकलने लगता है। पल में धूप और पल में छाया के समान वहां क्षण-क्षण में मौसम इतनी

तेजी से बदलता है कि आरोहियों के खाँसी लग जाती है, जुकाम ज़ोर पकड़ जाता है और गले ऐसे पड़ते हैं कि ठीक होने में ही नहीं आते।

मेरा निजी विश्वास है कि जब तक आक्सीजन का थैला इस्तेमाल करना अनिवार्य न हो जाये तब तक उससे बचना ही चाहिये।

यदि एवरेस्ट पर चढ़ने में सफलता प्राप्त करने के लिए कोई सबसे अधिक विश्वसनीय वस्तु है तो वह है उत्तम स्वास्थ्य और दृढ़ इच्छा-शक्ति।

शिखर पर चढ़ने का अन्तिम प्रयास करने से एक सप्ताह पूर्व श्री तेनसिंह ने अपनी प्रिय पत्नी को एक पत्र लिखा—

"मेरे लिए कोई चिन्ता न करना। इस बार मैं पर्याप्त स्वस्थ हूँ और मेरा विश्वास है कि मैं एवरेस्ट शिखर पर विजय प्राप्त कर लूँगा। तुम अपना और बच्चों का ध्यान रखना। तीनों का एक सम्मिलित फ़ोटो भेज दो तो अच्छा हो। सभी मित्रों और पड़ोसियों को मेरा अभिवादन कहना।"

साहसे श्रीः निवसति

अर्थात्

जहाँ साहस है वहीं सफलता है

मई के अन्तिम दिन थे। दिनमणि दिवाकर की प्रखर किरणों के कारण शीत ऋतु अलसाने और वसन्त ऋतु भी गर्म उसासें भरने लगी थी। अनायास ही ग्रीष्म का पहला झोंका हिमालय के श्वेत आंचल को छूता हुआ निकल गया। शिखरों की नीरवता भंग हुई, हिमाचल के अंग-अंग में नवराग का संचार हुआ और मानव की सुप्त आकांक्षाओं ने फिर से अंगड़ाई ली। एक दिन सहसा आरोहियों के दल ने अपना चिर अभिलषित वरदान 'आकाशवाणी' के दूरागत सन्देश में सुना—

"वसन्त के ढलते, ग्रीष्म के पहले पखवाड़े में, हिमालय पर ऋतु के शुभ से शुभतर होने की संभावना है। इसी अंतर में कोई से दो-एक दिन हिमालय के संघर्षमय जीवन में एक सुखद अध्याय के समान शांत और अनुकूल होंगे।

जिस क्षण की प्रतीक्षा में अदम्य उत्साह का मालिक मानव

अपने घर से दूर, क्षितिज के पार, अधर में खेमे डाले पड़ा था वही क्षण आज उसके सामने उपस्थित था। उसकी मानवता जाग उठी, कमरें कस गईं, गरदनें तन गईं और आशाएं उभर कर शिखरों से टकरा गईं। उसी क्षण कर्नल हंट की भृकुटि का एक सरल सा संकेत पाकर दो बांके वीर दूधिया हिम की रंगस्थली पर आगे कदम बढ़ाते हुए दिखाई दिये। इनमें एक थे २६ वर्षीय टाम बोर्डिलन और दूसरे ३४ वर्षीय डाक्टर इवांस। इनकी एक-एक गति और एक-एक प्रगति पर पचासों हृदय धड़क उठते और सैंकड़ों नयन आशाओं से भर जाते थे। कर्नल हंट नीचे के पड़ाव में बैठे दूरबीनों में आंखें गड़ाए अपलक नेत्रों से उन्हें देख रहे थे। वे लिखते हैं—

"मैंने एवरेस्ट पर अंतिम आक्रमण के लिए दो दल बनाये थे, जिनमें पहला दल था बोर्डिलन और इवांस का। ये दोनों साहसी युवक २५ मई को प्रातः काल एवरेस्ट पर विजय पाने के लिए बड़े उत्साह से आगे बढ़े।

मैंने उन्हें जिस उत्साह के साथ बर्फ काटते और आगे बढ़ते हुए देखा उससे मेरी आशाएं सफलता में बदलती दिखाई देने लगीं। कभी वे दीखते, फिर ओझल हो जाते और फिर दीखने लगते। मैं दूरबीन में आंखें गड़ाए तब तक उन्हें देखता रहा जब तक कि पूरी तरह मेरी आंखों से ओझल न हो गए। हमने शेष दिन और सारी रात नाना प्रकार की कल्पनाएं और अनुमान लगाते हुए बिता दी। अगले दिन मध्याह्नोत्तर जब वे दोनों आरोही

लौटकर पुनः प्रकट हुए तो उनके ओठों पर मुस्कान न थी, उनकी चाल में वह स्फूर्ति न थी । यह देखकर हमें समझते देर न लगी कि वे अपने कार्य में सफल नहीं हो पाए। वस्तुतः वे श्रांति के इतने निकट पहुंच चुके थे जितना कि मानव हो सकता है। बोर्डिलन का वजन पांच पौंड घट चुका था और उसके साथी की मानवी शक्ति बिल्कुल जवाब दे चुकी थी । इवांस ने हांपते हुए कहा कि वे २८२७० फुट तक पहुंच गये थे। इससे आगे क्लांति ने उनके पांव जकड़ लिए और दुर्दिन ने उनकी राह रोक ली।

मैंने बाहें फैला कर उसका स्वागत करते हुए कहा—"इवांस ! अपनी सफलता को कम न समझो। एवरेस्ट पर अब तक की मानव-पहुंच से तुम आगे हो।"

पहला दल भले ही असफल रहा किंतु मेरी आशाएं अब भी प्रबल थीं । दूसरे दल के नेता तेनसिंह पर जितना मुझे विश्वास था उससे भी कहीं अधिक उसे अपने पर विश्वास था। दार्जिलिंग से प्रस्थान करते समय उसने जो अमर वाक्य मुझे कहे थे वे आज भी मेरे कानों में गूंज रहे थे :—

"कर्नल ! आपके दल में सम्मिलित होते हुए मैं आशा करता हूँ कि आप किसी भी परिस्थिति में मुझे शिखर पर जाने से न रोकेंगे। चाहे मौसम कैसा ही हो, चाहे दल के अन्य सदस्य कितने ही असफल हो चुके हों, चाहे मेरा साथ देने वाला कोई अन्य व्यक्ति हो या न हो—आंधी, बर्फ, तूफान, थकान कुछ भी क्यों न हो, आप मुझे अकेले भी आगे बढ़ने से न रोकेंगे।"

इतना साहस ! इतना उत्साह ! इतना आत्मविश्वास ! उसे अपने दल में विद्यमान देखकर अभिमान से मेरा मस्तक ऊँचा हो रहा था। निश्चय ही तेनसिंह में यदि कोई कमी थी तो यही कि वह धरती का मानव था—कोई देवपुरुष नहीं। फिर उसके साथ हिलेरी जैसे साहसी सहयोगी को भेजते हुए सफलता में मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो चला था। जब २७ मई को इन दोनों वीरों ने एवरेस्ट पर अंतिम अभियान के लिए मुझ से विदा मांगी तो मेरा भावुक हृदय धड़क रहा था और मेरे हाथ कांप रहे थे। फिर जब ३० मई को वे अपनी ऐतिहासिक विजय-यात्रा से लौटे तब भी उनका स्वागत करते हुए मेरे हाथ इसी प्रकार कांप रहे थे। मैंने धड़कते हृदय से हिलेरी के मुँह से तेनसिंह के अकथ पराक्रम और एवरेस्ट पर उनकी अलौकिक विजय की कहानी सुनी :—

"२७ मई को प्रातःकाल साउथकोल पर मेरी नींद खुली तो अंग-अंग में क्लांति भरी थी। सारी रात हमनें करवटें बदलते, ठिठुरते और दांत कटकटाते बिता दी थी। अब भी बर्फानी हवा के थपेड़ों से तंबू के पर्दे ढोल की तरह बज रहे थे। मैंने अपने दाएं-बाएं दृष्टि घुमा कर देखा तो साथी (तेनसिंह) और ग्रेगरी घुटनों में सिर छिपाए व्यर्थ ही सोने का प्रयत्न कर रहे थे। मैं कुछ देर इसी प्रतीक्षा में रहा कि शायद आंधी का वेग कुछ कम हो जाए, किंतु सारा दिन और सारी रात वह उसी वेग से चलती रही। हमने एक और बेआरामी की रात इसी प्रतीक्षा में बिता दी। २८ की प्रातःकाल वायु तो बहुत कुछ शांत हो चुकी थी किंतु पेम्बा (शेरपा) सख्त

बीमार पड़ गया। भार ढोने के लिए केवल एक कुली आंगन्यिमा बच रहा था। कुलियों के बिना ऊपर चढ़ने का विचार छोड़ना तो असंभव था अतः हमने पेम्बा के हिस्से का सामान स्वयं ही आठवें पड़ाव तक ले जाने की ठानी। हमने आवश्यक सामान को भी फिर से छांटा और केवल अत्यावश्यक वस्तुओं को ही साथ लिया। हमने आंगन्यिमा, ग्रेगरी और लोवे को आगे भेज दिया। १० बजे 'साथी' और मैं उनके बनाये रास्ते पर शिखर की ओर चल दिये। हमारी पीठों पर पच्चीस-पच्चीस सेर भार था और हम दोपहर होते-होते अपने सहायक दल से जा मिले। वहां पास ही हमने पिछले वर्ष के स्विस दल के तंबू का खंडहर देखा। आंधियों के थपेड़ों से उसकी धज्जियां उड़ चुकी थीं और दो एक टुकड़े अब भी बांसों से उलझे हुए फड़फड़ा रहे थे। लगभग दो बजे हम पाँचों व्यक्ति २७६०० फुट की ऊंचाई पर पहुंचे और पड़ाव डालने के लिए उचित स्थान ढूँढ ही रहे थे कि नेता तेनसिंह की पैनी आंखों ने उसी स्थान पर लगाये गये पिछले वर्ष के कैंप की जगह को झट से पहचान लिया। आंगन्यिमा, ग्रेगरी और लोवे ने अपने-अपने भार का वहीं ढेर लगाया और सूर्य ढलने से पहले-पहले निचले पड़ाव पर पहुंच जाने के विचार से उल्टे पांव लौट चले। हम दोनों ने मिल कर वहां तंबू गाड़ दिया और 'साथी' स्टोव जला कर सूप बनाने में लग गये। इधर गरम सूप तनी आंतों में पहुँचा उधर थकी पलकों में नींद ढुलक गई। रात भर ऐसी गाढ़ी नींद आई कि

एक ही करवट में सारी रात बिता दी । प्रातः नींद खुली तो चार बज चुके थे ।

'साथी' ने तंबू के बाहर झांका और संतोष की एक ऐसी सांस ली जैसे कि कोई निधि मिल गई हो । मैंने चकित होकर पूछा—

"क्या है ?"

'साथी' ने उसी मुद्रा में अविचल रूप से खड़े हुए कहा—"बाहर आओ तो बताऊँ ।"

मैं झटपट सोने वाले थैले से निकलकर बाहर आया तो क्या देखता हूँ कि कोई १६००० फीट नीचे प्रकाश की हल्की रेखाएँ टिमटिमा रही हैं और 'साथी' श्रद्धाभाव से उन्हीं की ओर टिकटिकी लगाये देख रहा है । मुझे पास आया जानकर उसने पूछा—"देख रहे हो उन टिमटिमाते दीपों का धुँधला प्रकाश ?"

मैंने कहा—"हाँ, देख तो रहा हूँ, किन्तु कौन सा स्थान है वह ?"

तेनसिंह—"थ्यांगवोचे का विहार ! इस समय जबकि हमारे सिर पर आकाश और पाँवों तले हिम का अथाह सागर है और हमारे साथी हम से दूर बहुत नीचे छूट गये हैं, अब भी हमारी मंगल-कामना के लिए विहार के भिक्षु दीप जलाये भगवान् से प्रार्थना कर रहे होंगे । वे हमारी सफलता के लिए हमें आशीर्वाद दे रहे होंगे ।"

'साथी' ने ये अन्तिम शब्द इतनी दृढ़ता से कहे कि मानो किसी ने उसमें असीम शक्ति भर दी हो । 'उस अनन्त शक्ति' पर

उसके निश्छल विश्वास को देखकर मैं कुछ-कुछ समझ पाया कि उसका मानव-हृदय अलौकिक लीलाओं के लिए प्रेरणा कहाँ से पाता है। मन ही मन मैंने उसके आत्म-विश्वास को सराहा और यात्रा की तैयारी में लग गया। मैंने ज्यों ही आक्सीजन के थैलों को टटोला तो उनमें बहुत कम प्राण-वायु रह गई थी। अभी हमने सवा हज़ार फीट ऊपर चढ़ना और फिर इससे तिगुना नीचे उतर कर आना था। थैलों में प्राण-वायु तो हमारे लिये आधे रास्ते के लिए भी पर्याप्त न थी। सहसा मन में आया—'क्या हम आगे न जा सकेंगे ?'

यह विचार आते ही मेरा हृदय मानो सिकुड़ने सा लगा। तब तक 'साथी' भी भीतर आ चुका था और झटपट चल देने की तैयारियाँ करने लगा था। हम दोनों ने यही निश्चय किया कि प्राण-वायु चाहे कितनी ही अपर्याप्त क्यों न हो, हम आगे चलेंगे और अवश्य चलेंगे। जहां प्राण-वायु की एक मात्रा सूँघनी है वहाँ आधी सूंघेंगे और जहाँ आधी सूंघनी है वहाँ अपनी इच्छा-शक्ति के द्वारा प्राण-वायु के बिना ही कुछ कदम बढ़ा लेंगे—आगे भगवान् जो करेगा सो भली ही करेगा। हम ठीक साढ़े छः बजे तंबू से चल दिये। हम कुछ ही दूर चले होंगे कि दूर से हमें सफेद बर्फ में कुछ काला-काला सा दिखाई दिया। वह हमें कोई वस्तु दिखाई दी। उत्कंठा से हम झटपट आगे बढ़े तो २८००० फुट की ऊँचाई पर आक्सीजन की दो बोतलें बर्फ में आधी दबी हुई पाईं। मैंने निरीक्षण

किया तो उनमें अब भी पर्याप्त प्राण-वायु विद्यमान थी।

'साथी' ने ऊपर अंगुली उठाते हुए कहा—देखा भगवान् जब देना चाहे तो छत फाड़ कर भी दे देता है। उसकी करुणा के हाथ बहुत लंबे हैं, नहीं तो इतनी ऊँचाई पर उसके बना हमारी सहायता को कौन पहुँच सकता है! दीखता है कि इवान्स और वोर्डिलन इन्हें अपने साथ नहीं ले जा पाये।

मैंने कहा—निश्चय ही वे दोनों इन्हें यहाँ छोड़ गये हैं। आश्चर्य है कि प्राण-वायु बोतलों में अब तक सुरक्षित रही है।

'साथी'—"हां भाई। यदि यह सुरक्षित न रहती तो भगवान् हमारी सहायता करते ही कैसे!"

इस आकस्मिक घटना ने हमारे हृदय में और भी उत्साह भर दिया। यहाँ से कुछ आगे बढ़ने पर हमारा यात्रा की सब से बड़ी कठिनाई से साक्षात्कार हुआ। हमने देखा कि एक चालीस फ़ीट के लगभग ऊँची चट्टान हमारी राह रोक कर खड़ी है। उसके पश्चिम की ओर गहरी खाई थी और पूर्व की ओर एक कॉर्निस (Cornice)। आगे बढ़ने का मार्ग एक दम बंद हो चुका था। हम करते तो क्या? सहसा 'साथी' की नजर एक संकरी दरार पर पड़ी जो चट्टान और कॉर्निस के बीचों-बीच दूर तक फट कर चली गई थी। उसने दृढ़ता से कहा—"लो अब इसी दरार में से जाना होगा।" और हम दोनों ने भगवान् के आसरे उस अंधे कूएँ में छलांग लगा दी। हम उससे कहीं चिपटते, कहीं रेंगते, कहीं उसे काटते-छीलते आगे बढ़ रहे थे किन्तु कुछ पता

न था कि वह हमें किधर लेजाएगी और किधर नहीं। उसका कहीं कोई अंत ही दिखाई न देता था। इधर हम लगातार अढ़ाई घंटों से कुल्हाड़ा चलाते आ रहे थे और हाथ-पांव थक कर चकनाचूर हो चुके थे। सहसा दरार की दूसरी ओर हमें चमकीला प्रकाश सा दिखाई दिया। हम धड़कते हृदय से वहां पहुँचे तो कुछ हाथों पर हमारे सामने एवरेस्ट की चोटी खड़ी थी और उसके मस्तक पर पांव रखे 'साथी' खड़ा मुस्करा रहा था। उसने बारी-बारी भारत, नेपाल और इंगलैंड के ध्वज निकाले और अपने हिमकुठार पर बांधकर उन एवरेस्ट शिखर पर लहरा दिया। पहले क्षण इस दिव्य दृश्य को मेरी आंखों ने देखा और दूसरे ही क्षण मैंने उसे कैमरे में चित्रबद्ध कर लिया। इसी बीच 'साथी' एक बार झुका और उसने हाथों से शिखर की बर्फ को खोद कर कुछ बिस्कुट, कुछ सूखे फल, कुछ मुरब्बा अर्थात् जो कुछ भी उस समय अमूल्य से अमूल्य वस्तु उसके थैले में थी उसने वहां अर्पित कर दी। यही थी 'साथी' की चोमुलंगमां (पर्वतों की देवी) के लिए तुच्छ-सी भेंट ! उसकी इस भक्ति-भावना को देखकर मेरा हृदय गद्गद हो उठा और मैंने भी अपने झोले में से कुछ खाद्य-पदार्थ निकाल कर उसी रीति से चोमुलंगमां को अर्पित कर दिये।"

श्री तेनसिंह को शिखर पर पहुँच कर विशेष प्रसन्नता हुई किन्तु वे जिन उद्गारों और प्रतिज्ञाओं को साथ लेकर आये थे उन्हें निभाने की भावना उनमें जागरूक थी। एवरेस्ट शिखर पर तिरंगा लहराने के बाद वे बताते हैं —

"मैं बड़ा प्रसन्न था और किसी प्रकार की थकावट न थी। मैंने क्या सफलता प्राप्त की है, इस बात पर विचार करने का मुझे समय ही न था। वहां तो प्रथम विचार यही था कि किसी प्रकार आक्सीजन और ऋतु के अनुकूल रहते वापिस पहुँचा जाये। मुझे वास्तविक प्रसन्नता तो वहाँ से लौटने के उपरान्त, बाद में, हुई।"

हमने शिखर पर से हिमालय के दूर-दूर तक दृश्य देखे। हमने तिब्बत तथा तिब्बत की ओर से एवरेस्ट का उत्तरी मार्ग भी देखा जिससे १९५१ से पूर्व पर्वतारोही दल एवरेस्ट पर चढ़ने का प्रयत्न करते रहे हैं। ऊपर के कोण से वह बहुत ही भयानक और पथरीला दिखाई देता था।

स्वयं एवरेस्ट शिखर एक ओर चौरस है और दूसरी ओर ढलवाँ है। शिखर के उत्तर की ओर बर्फ है, दक्षिण तथा पूर्व की ओर चट्टानें हैं तथा पश्चिम में बर्फानी ग्लेशियर। यदि बर्फ काटी जाये तो दो या तीन व्यक्ति दुनियां की सबसे ऊँची चोटी पर खड़े हो सकते हैं। परन्तु शिखर से २० या ३० फुट नीचे दो व्यक्तियों के सोने के लिये पर्याप्त स्थान है। एवरेस्ट पर्वत का आधार भाग तो स्लेट की मोटी तहों में उभरा हुआ है किन्तु चोटी का भाग काले चूने के पत्थर के राव होने से संगमरमर बन रहा है। किसी समय ये पत्थर की तहें समुद्र की गहराई में जमी थीं जबकि प्रशान्त सागर से लेकर तिब्बत तक टाइथस समुद्र फैला हुआ था।

एवरेस्ट के २० मील के घेरे में विविध दृश्य हैं। उत्तर की ओर भूरे और लाल पठार दिखाई देते हैं तथा पर्वतों की नंगी चोटियों में कहीं-कहीं बर्फानी मुकुट भी चमकते दिखाई देते हैं। ऐवरेस्ट के दक्षिणपूर्व में ग्लेशियर हैं जो प्रायः जमे रहते हैं और गर्मियों में नाममात्र को पिघलते हैं। बीच-बीच में दयार के घने जंगल भी दिखाई देते हैं।

मुझे ये सभी दृश्य बड़े मनोरम प्रतीत हुए किन्तु उन्हें देखने को अधिक समय न था। यह मेरा अहोभाग्य है कि इतनी ऊँचाई पर पहुँच कर भी मेरी मानसिक और शारीरिक दोनों अवस्थाएँ नार्मल रहीं। नहीं तो पहले के अभियानों में इससे बहुत नीचे २४००० फुट की ऊँचाई पर ही दृष्टि-विभ्रम और मानसिक भ्रम हो जाया करता रहा है। प्रायः वे अपनी सूझ-बूझ खो बैठते थे। किन्तु मुझे इस प्रकार का कोई भ्रम नहीं हुआ। मेरी विचार-शक्ति बिल्कुल ठीक रही और आखिरी पड़ाव तक मुझे बिना स्वप्नों की गहरी नींद आती रही।"

कर्नल हंट ने व्यवस्था की थी कि २४००० फुट ऊंचे दक्षिण-कोल पर स्थित तेनसिंह और हिलेरी का सहायक दल बर्फ की ढलानों पर थैलों से अंग्रेजी का बड़ा एल L अक्षर बनाकर उन्हें एवरेस्ट विजय की सूचना देगा। यह संकेत यथा-निर्दिष्ट समय पर बिल्कुल ठीक रीति से किया गया किन्तु आकाश में तुरन्त बादल छा जाने के कारण नीचे के लोग उसे देख न सके, इसलिए यह सूचना २४ घंटे विलम्बित हो गई।

कर्नल हंट ने बताया :—

"अगले दिन जब मुझे पता चला कि दोनों वीर एवरेस्ट शिखर तक पहुँचने में सफल हो गये हैं तो मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहा। जिस समय यह समाचार संसार के कोने-कोने में सुनाई दे रहा था, उसी दिन भारतीय वायुसेना के एक विमान को एवरेस्ट पर उड़ाने का प्रबन्ध किया गया था किन्तु बाद में इस उड़ान को जान-बूझकर कुछ दिनों के लिए रोक दिया गया ताकि इंजन की आवाज़ से ढीली बर्फ के तोदे कहीं सरकने न लगें और वापिस लौटते हुए आरोही दल के लिए किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित न हो जाय।

फिर एवरेस्ट विजय के ७ दिन बाद इस विमान को उड़ाया गया। इससे ठीक बीस वर्ष पूर्व हौस्टन दल ने एवरेस्ट पर उड़ान करने का प्रयत्न किया था। जब मैं नामचे बाज़ार गांव में था तब मैंने भारतीय वायुसेना का एक विमान उड़ता देखा था किन्तु उस समय मुझे यह विदित न था कि वह एवरेस्ट पर उड़ रहा है। पीछे मुझे पता चला कि यह विमान बिहार के एक हवाई अड्डे से उड़ा था।"

यह एक लिबरेटर किस्म का विमान था और इसे फ्लाइट-लेफ्टिनैंट ई० पाल चला रहे थे। उनके अतिरिक्त विमान में पांच चालक तथा चार कैमरामैन थे। इसमें आक्सीजन आदि रखने की पूरी व्यवस्था थी। इस उड़ान का उद्देश्य भारतीय वायुसेना के कल्याण-कोष के लिए धनसंग्रह करना एवं एवरेस्ट शिखर के

चित्र लेना था। इंग्लैंड के 'लन्दन टाइम्ज़' और अमरीकी 'लाइफ़' व 'टाइम' पत्रिकाओं ने प्रत्येक चित्र के लिए २००० पौंड तक मूल्य दिया। सिनेमा निर्माताओं ने भी चित्र खरीदे।

इस वायुयान ने एवरेस्ट पर दो बार उड़ान की। पहली बार शनिवार, छः जून, सन् १९५३ को प्रातःकाल बिहार के हवाई अड्डे से उड़कर उत्तर की ओर बढ़ा। एक घंटे तक उड़ने के पश्चात यह विमान दक्षिण दिशा से हिमालय की ओर बढ़ा।"

विमान कैमरामैन अपना अनुभव बताते हुए लिखते हैं :—

"मैदानी इलाका पीछे छूट गया और नीचे पहाड़ियां दिखाई देने लगीं। बीस मिनट तक हम सर्वोच्च शिखर की खोज में उस हिमाच्छादित पर्वतीय क्षेत्र पर मंडराने लगे। उड़ते-उड़ते हम समुद्रतल से ३२००० फ़ुट से भी ऊपर जा पहुँचे अर्थात् एवरेस्ट शिखर से भी तीन हजार फ़ुट ऊपर। इतनी ऊँचाई से नेपाली सीमा पर उड़ते हुए हमने एवरेस्ट को देखा और उसकी ओर बढ़ने लगे। बादलों का नाम-निशान न था और स्वच्छ आकाश में मीलों तक बर्फीली चोटियां दिखाई दे रही थीं। उन्हीं में सबसे ऊँची और हिममुकुटों से सजी एवरेस्ट की चोटी चांदी के चमकीले पहाड़ की तरह उभरी हुई दिखाई दे रही थी। उड़ने के लगभग ९० मिनट बाद हमारा विमान एवरेस्ट के समीप पहुँच गया।

मौसम बहुत अच्छा था और १०० मील दूर की वस्तु भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। बादल एवरेस्ट शिखर से बहुत नीचे थे और

चोटी साफ दिखाई दे रही थी। हमारे विमान ने एवरेस्ट के ऊपर अनेक बार पूर्व से पश्चिम की ओर उड़कर एवरेस्ट को पार किया। हमने उसके तरह-तरह के फोटो लिए। जब हम फोटो ले चुके तो एक बड़ी मनोरंजक बात हुई। हमें विदित हुआ कि जिस शिखर को हम एवरेस्ट समझे बैठे थे वस्तुतः वह मैकालू शिखर था जिस की ऊँचाई २७००० फुट है। इसलिए अगले दिन रविवार को फिर दूसरी उड़ान करने का निश्चय किया गया। दूसरे दिन हमने एवरेस्ट के कई रंगीन और सादे चित्र लिये। फ़िल्म-चित्र भी लिये।"

एवरेस्ट की १६० मील की यात्रा करके जब विजयी दल बनेया गाँव में पहुँचा तो दर्शकों तथा पत्रकारों ने उन्हें घेर लिया। श्री तेनसिंह, हिलेरी और कर्नल हंट का पुष्पमालाओं से स्वागत किया गया।

तब से तीन मास पूर्व इन्हीं पगडंडियों से होकर हमारे कथा-नायक श्रीतेनसिंह अभिनंदनों और विदाई समारोहों के बीच होकर गुजरे थे। तब उनके कदमों में स्फूर्ति और हृदय में साहस था। अब जनता दुगुने जोश से उनका अभिवादन कर रही थी और हर एक व्यक्ति हाड़मांस के उस नाटे युवक के दर्शन पाने को उतावला था जिसने अपूर्व वीरता दिखाकर अपने नाम को अमर कर दिया था। वह मूर्ति विजय के तेज से देदीप्यमान थी किन्तु व्यवहार में पहले से भी नम्र। विजय के गौरव ने उसे और भी विनीत बना दिया था। अभिनंदन का उत्तर देते हुए श्री तेनसिंह ने नम्र शब्दों में कहा—

"मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि हम सकुशल लौट आये हैं और मार्ग में किसी प्रकार की दुर्घटना नहीं हुई। एवरेस्ट पर यह केवल मेरी और हमारे दल की ही विजय नहीं अपितु मानव की प्रकृति पर विजय है। मैं मानवता का एक तुच्छ प्रतीक ही हूँ। एक प्रकार से हमने पिछले कई वर्षों से किये जा रहे काम को पूरा किया। इससे पूर्व एवरेस्ट पर चढ़ने के दस प्रयत्न हो चुके हैं। प्रत्येक प्रयत्न ने एवरेस्ट के विषय में एक नया अनुभव दिया। आप कह सकते हैं कि आज वह अधूरा अनुभव पूर्ण हो गया। हमने अपने पूर्ववर्ती आरोहियों के कंधों पर पाँव रखकर संसार की छत का स्पर्श किया। संक्षेप में मैं यही कहूँगा कि यह एक मानव की विजय नहीं अपितु मानव जाति की विजय है। एक व्यक्ति का एवरेस्ट पर अकेले चढ़ जाना सम्भव ही नहीं। वह तो एक संगठित और सुसज्जित दल का ही काम है। हमारी सफलता का करण भी हमारे दल की परस्पर मिलकर काम करने की भावना ही थी।"

पत्रकारों ने विजयी दल के नेताओं को अपनी जीप में बैठाकर एक दिन पहले ही दार्जिलिंग पहुँचा दिया। एवरेस्ट से लौटने के बाद श्री तेनसिंह सर्वप्रथम अपनी ७८ वर्षीय माता को प्रणाम निवेदन करने के लिए गये जोकि एवरेस्ट की तलहटी में थामी नामक ग्राम में अपने शेर बेटे की प्रतीक्षा बड़ी उत्कंठा के साथ कर रही थी।

उधर जब दार्जिलिंग के डिप्टी-कमिश्नर ने श्रीमती आंगलाहमू

को और पेमपेम तथा नीमा को यह सूचना दी कि श्री तेनसिंह एवरेस्ट शिखर पर सर्वप्रथम चढ़ने में सफल हो गये हैं तो उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। श्रीमती आँगलाहमू ने गद्गद स्वर में कहा—

"मैं जान गई हूँ कि अब मेरा पति विश्व-भर की चर्चा का विषय बन गया है। मुझे अभिमान है कि संसार उनकी प्रशंसा करता है।"

श्रीमती तेनसिंह के पास बधाइयों के तारों का तांता लग गया। एक दिन में ही बधाइयों के ढेरों की ऊँचाई डेढ़ फुट ऊँची हो गई थी। अगले दिन श्री तेनसिंह स्वयं दार्जिलिंग पहुँच गये और उन्होंने देशबन्धुओं और आत्मीयजनों के बीच बैठ कर एवरेस्ट-विजय की कहानी सुनाई।

श्री तेन सिंह

बालार्कोऽपि स्वपादैः प्रहरति शिखरान्।

अर्थात्—

प्रातःकाल उगते हुए बालसूर्य के भी चरण (किरणें) पहले उन्मत्त पर्वत-शिखरों के मस्तक पर पड़ते हैं।

बचपन से ही तेनसिंह को पहाड़ों पर चढ़ने का बहुत चाव था। सम्भवतः वह पहाड़ों पर चढ़ने और उन पर विजय पाने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। उनके पिता श्री सिंगमा और माता श्रीमती किंगोयुम पूर्वी नेपाल की सोलाखुंबू घाटी के रमणीक पर्वतों के मध्य थामे नामक गाँव में रहते थे। यहीं पर जून १९१४ में विश्व-शिरोमणि श्री तेनसिंह का जन्म हुआ। उनके दो भाई और भी थे जिनका बाल्यकाल में ही देहान्त हो गया था। श्री तेनसिंह की दो बहिनें अब भी जीवित हैं और उसी प्रदेश में अपनी माता के साथ रहती हैं।

थामे गाँव से एवरेस्ट स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उसका चमचम करता चाँदी का मुकुट बालक तेनसिंह के लिए परियों के महल से कम आकर्षक न था। वह ऊँचे-नीचे सैंकड़ों शिखरों के बीच उभरे हुए उस सब से ऊँचे शिखर को देखता तो मन ही मन किसी

उड़न-खटोले में बैठकर वहाँ पहुँचने के सपने लिया करता था। उसे क्या पता था कि किसी दिन वह इसी रुपहले शिखर पर चढ़ कर प्रकृति पर मानव की विजय का एक आदर्श स्थापित कर देगा।

उस गाँव में कुल दस बारह झोंपड़ियाँ थीं, सभी किसानों और मजदूरों की। तेनसिंह के पिता भी पीठ पर सामान ढोकर अपने परिवार का खर्च चलाया करते थे। पिता की देखा-देखी बालक तेनसिंह भी दिन भर पहाड़ों पर चढ़ता-उतरता रहता। कठिन से कठिन मार्ग पर भी जाने से वह न घबराता था। यही उसका बचपन का सर्वप्रिय खेल था। जब वह अपने पिता और पितामह के मुँह से गोरे साहबों के हिमालय पर चढ़ने की कहानियाँ सुनता तो उसके मन में भी पर्वत शिखरों पर चढ़ने की लालसा हुआ करती थी। कहते हैं कि अकेले ही दुर्गम पर्वतों पर जाने के लिए तेनसिंह को कई बार उसकी माता ने डाँटा और पिता ने मारा-पीटा, किन्तु वह बाज न आया। वह बाज आता भी कैसे, उसे तो भगवान् ने इसी उद्देश्य के लिए धरती पर उत्पन्न किया था।

आज भी उस अल्हड़ बचपन की याद आने पर तेनसिंह खिलखिला उठते हैं और बड़े चाव से सुनाते हैं कि—

"न जाने क्यों मुझे स्वभाव से ही पर्वतारोहण से विशेष प्रेम था। मेरी माँ हमेशा मुझे इस भयंकर चाव से बाज आने को कहा करती थी, किन्तु उसके स्नेह-वचन से भी अधिक मुझे पर्वतों के भ्रमण में आनन्द आता था। एक बार मैंने सुना कि एक पर्वता-

रोही दल कुछ ही दिनों में सिक्किम से हिमालय पर चढ़ने के लिये जा रहा है। मेरे पाँवों में भी गुदगुदी होने लगी। मेरे पड़ोस के कई व्यक्ति उस दल में काम करने जा रहे थे। मुझे निश्चय था कि माँ मेरे लाख मनाने पर भी मुझे अपनी आँखों से दूर जाने की कभी अनुमति न देगी, इसलिए मैं एक दिन उसे सूचना दिये बिना ही घर से निकल भागा, और जाकर आरोही दल में सम्मिलित हो गया। तब मैं अधकचरी उम्र का बालक ही हूँगा, किन्तु मेरी उत्कट अभिलाषा देखकर सरदार ने मुझे दल में काम पर लगा ही दिया। वह काम, काम नहीं था, मानो मेरा मुँह-माँगा वरदान था। काम यद्यपि भार उठाने का ही था किन्तु मुझे ऐसा लगा जैसे मुझे त्रिलोकी का राज्य मिल गया हो। कहाँ वह दिन और कहाँ १९५३ का आज का दिन, मैं पर्वतारोहण ही करता आ रहा हूँ। यही मेरा शौक़ है, यही मेरा व्यवसाय और यही मेरा लक्ष्य। छुटपुट पहाड़ियों पर मैं कई विदेशी और देशी दलों के साथ जाता रहा। १९३५ में मैं पहली बार एवरेस्ट पर रटलेज के दल के साथ गया।

पर्वतारोहण का चाव तो मुझे था ही, भगवान् की दया से साहस की भी मुझ में कमी नहीं थी। एवरेस्ट पर चढ़ने के पहले ही प्रयत्न में मुझे जो सफलता प्राप्त हुई, उससे मेरा साहस और प्रतिष्ठा दोनों ही बढ़ गये। कम-से-कम मुझे यह विश्वास तो अवश्य हो गया कि भविष्य में एवरेस्ट पर जाने वाले किसी भी दल के साथ जाने का मेरा मार्ग खुल गया है। भगवान् की दया से हुआ भी ऐसा

ही। १९३६ से लेकर जितने भी अधिकृत या अनधिकृत अभियान एवरेस्ट पर हुए हैं, प्रायः सभी में मैं सम्मिलित हुआ। प्रारम्भ में दलों के साथ जाते हुए यद्यपि मेरा काम भार उठाना ही हुआ करता था, फिर भी मैं जान-बूझकर काम अपने जिम्मे लिया करता था। माँग आने पर मैं सबसे पहले तैयार होता और छोटे-से-छोटा काम करके भी उतना ही प्रसन्न होता, जितना कि कोई बड़ा काम करके। परिणामतः पर्वतारोहण का कोई भी अनुभव मुझसे अछूता न रह सका। इसी आधार पर १९३८ के अँग्रेजी दल ने मुझे अपना पथ-प्रदर्शक बना कर एवरेस्ट पर साथ ले जाने को चुना।

१९५२ का गत वर्ष मेरे लिए वरदान बनकर आया कि जब मुझ सरीखे भारत के एक तुच्छ सैनिक ने एवरेस्ट पर चढ़ने के संसार के सब रिकार्ड को तोड़कर २८२१० फुट की ऊँचाई तक पहुँचने का नया रिकार्ड स्थापित किया। और, वह भी आक्सीजन का प्रयोग किये बिना ही।"

इसके बाद १९५३ में श्री तेनसिंह ने एवरेस्ट पर जो ऐतिहासिक विजय पाई, उसे पढ़कर मानव-जाति अनंत काल तक प्रेरणा प्राप्त करती रहेगी। विश्व ने उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिए जो स्वर्ण-पदक और मैडल प्रदान किये, वे उनकी विश्वमान्यता के तुच्छ से प्रतीक हैं, किन्तु मानव को आज तक मिले गौरव के वे अद्वितीय समर्थक हैं। नेपाल-नरेश त्रिभुवन ने उन्हें 'नेपालतारा' और 'गोरखा दक्षिणबाहु' की उपाधि देकर, इंग्लैण्ड ने सर्वोच्च-

वीरता पदक 'जार्ज मैडल' देकर श्री तेनसिंह का सम्मान किया। भारत ने अपने सुपूत को अनेक पुरस्कारों के अतिरिक्त एक विशेष पदक प्रदान किया, जिसके एक ओर एवरेस्ट का चित्र है और दूसरी ओर अंकित है—

साहसे श्रीः निवसति

संक्षेप में यही एवरेस्ट विजय की कहानी है।